मार्क्स से आज तक साम्राज्यवाद के मार्क्सवादी सिद्धांत: एक समकालीन आलोचनात्मक पुनर्मूल्यांकन

- **अभिनव सिन्हा**

पिछले एक दशक से पूँजीवादी दुनिया अपने इतिहास के संभवतः सर्वाधिक व्यवस्थागत और ढाँचागत संकट में फँसी हुई है। उबरने की सारी भविष्यवाणियाँ कोरी कल्पना साबित हो रही हैं। भूमंडलीकरण के दौर में साम्राज्यवाद एक ऐसे चरण में पहुँच चुका है जिसमें ठहराव एक आम परिघटना बन चुका है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि पूँजीवादी दुनिया 1973 के पतन के बाद से पूरी तरह से संकट से कभी नहीं उबर पाई। विश्व पूँजीवाद 1970 के आरंभ से ही एक हल्की मंदी के दौर से गुजर रहा है, यह समय-समय पर गंभीर संकटों में फँसता रहा है और अवास्तविक पूँजी के बुलबुले पैदाकर अपना अस्तित्व बचाए हुए है। 2007-08 में अमेरिका में सबप्राइम मोर्टगेज क्राइसिस (सबप्राइम ऋण संकट) के साथ सबसे हालिया संकट की शुरुआत हुई जो अमेरिका के बाद बाकी दुनिया में भी फैल गया। अभी तक वित्त के क्षेत्र में अभिव्यक्त हुए सभी संकटों में से यह सबसे अधिक गंभीर संकट साबित हुआ है। इस संकट के साथ ही एक वैश्विक मंदी की शुरुआत हुई जो एक दशक से जारी है और इसकी राजनीतिक अभिव्यक्ति कम होते अमेरिकी साम्राज्यवादी प्रभुत्व और अन्य साम्राज्यवादी गुटों, जिसमें मुख्यतः चीन-रूस धुरी आती है, के बीच गहराती प्रतिस्पर्धा के रूप में हुई है। भले ही एंग्लो-सैक्सन धुरी (Anglo-Saxon axis) और चीन-रूस धुरी के बीच आमने-सामने का कोई प्रत्यक्श सैन्य टकराव नहीं चल रहा है, मगर उनके बीच गहराती प्रतिस्पर्धा मुद्रा युद्ध, उत्तरी कोरिया, वेनेज़ुएला, ईरान आदि तीसरी दुनिया के देशों को लेकर कूटनीतिक संघर्ष और सीरिया एवं एक हद तक यूक्रेन में उनके बीच चल रहे अप्रत्यक्ष छाया युद्ध के रूप में अभिव्यक्त हो रही है। वर्तमान में दुनिया के ऊपर (अगर विश्व युद्ध नहीं तो) एक बड़े युद्ध का खतरा मंडरा रहा है। ऐसे परिदृश्य में, साम्राज्यवाद के वर्तमान चरण, भूमंडलीकरण और उत्तर-फ़ोर्डवाद के दौर में इसकी कार्यप्रणाली में आए परिवर्तन, संचय के नए रूप और नव-उदारवादी नीतियों की शुरुआत के बाद से संकट ने जो रूप अख्तियार किया है, इन सभी का विश्लेषण करना विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हो गया है। डेविड हार्वी, एलेन मीक्सिंस वुड, डुमेनिल और लेवी, जॉन स्मिथ, क्रिस्चियन फुक्स, प्रभात और उत्सा पटनायक आदि मार्क्सवादी अकादमीशियनों ने भी भूमंडलीकरण के दौर में साम्राज्यवाद की नई लाक्षणिक विशेषताओं का विश्लेषण करने की कोशिश की है। उनमें से कुछ ने तो मार्क्स और लेनिन से सीखते हुए इक्कीसवीं सदी में साम्राज्यवाद का विश्लेषण करने की कोशिश की है; बाकी ऐसे हैं जो नएपन का दावा करते हुए अकादमीशियनों के नए-नए शब्द गढ़ने, "फिर से आग के आविष्कार करने", नई बोतल में पुरानी शराब पेश करने के जुनूनी बाध्यकारी विकार (obsessive compulsive disorder) से मुक्त नहीं हो पाए हैं। इन नए अध्ययनों ने साम्राज्यवाद पर एक नई बहस शुरू कर दी है, जिसे आज 'नव-साम्राज्यवाद', 'साम्राज्य' इत्यादि जैसे विशेषणों से नवाज़ा जा रहा है। इसलिए साम्राज्यवाद के क्लासिकी मार्क्सवादी सिद्धांत, 1960 के और 1970 के दशक में साम्राज्यवाद पर गढ़े गए नव-मार्क्सवादी सिद्धांत जैसे कि मोनोपोली कैपिटल स्कूल, 'निर्भरता' के सिद्धांत, विश्व व्यवस्था के सिद्धांत और साथ ही साथ नवउदारवाद और भूमंडलीकरण के स्वर्णिम दौर में साम्राज्यवाद पर पेश किये गए विभिन्न मार्क्सवादी सिद्धांत और नई सदी में सामने आए साम्राज्यवाद के नवीनतम विश्लेषणों का एक आलोचनात्मक और समकालीन पुनर्मूल्यांकन प्रासंगिक है।

चूँकि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवाद पर जितने भी सिद्धांत सामने आए वो सभी मार्क्सवादी होने का या कम से कम मार्क्सवाद से काफ़ी हद तक प्रभावित होने का दावा करते हैं और मार्क्स एवं लेनिन के लेखन को आधार बना कर लिखे गए हैं, इसलिए साम्राज्यवाद के क्लासिकी मार्क्सवादी सिद्धांतों के मूलभूत नियमों का पुरावलोकन आवश्यक होगा। और स्वाभाविक ही इसके लिए शुरुआत वैश्विक स्तर पर पूँजीवाद के विस्तार, इसके कारण और उन्नत देशों एवं कालांतर में उपनिवेश बने पिछड़े देशों में इसके प्रभाव के बारे में मार्क्स के टुकड़ों-टुकड़ों में किए गए अवलोकनों से करनी होगी।

साम्राज्यवाद पर मार्क्स

मार्क्स ने साम्राज्यवाद और पूँजीवाद की इज़ारेदारी अवस्था के बारे में कोई संपूर्ण और सुसंगत सिद्धांत नहीं विकसित किया। मार्क्स के देहांत के समय पूँजीवादी व्यवस्था का इज़ारेदारी चरण में संक्रमण अभी भी पूरा नहीं हुआ था और इस प्रक्रिया की प्रत्यक्ष अभिव्यक्तियाँ अभी पूरी तरह से प्रकट नहीं हुई थीं। राष्ट्रीय सीमाओं से परे पूँजी का विस्तार, विश्व बाज़ार का सृजन, विदेश व्यापार और उपनिवेशवाद पर मार्क्स की टुकडो-टुकडो में मगर बेहद मूल्यवान टिप्पणियाँ हैं और साम्राज्यवाद का अध्ययन करने के लिए वे आज भी प्रासंगिक हैं। मार्क्स का विश्लेषण इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि मार्क्स ने उत्पादन की पूँजीवादी पद्धति के जिन सारभूत रुझानों की पहचान की थी, जैसे कि पूँजी का सांद्रण और केंद्रीकरण, संचय और विस्तारित पुनरुत्पादन का नियम और मुनाफ़े की दर के गिरने के रुझान का नियम, साम्राज्यवाद और इज़ारेदार पूँजी की अवस्था इन्हीं रुझानों का ही परिणाम हैं।

मार्क्स दुनिया के दूसरे क्षेत्रों में, ख़ासकर एशिया में, पूँजीवादी विस्तार को स्पष्ट रूप से दो कालों में विभाजित करते हैं, क्योंकि मार्क्स ने अफ्रीका और लातिन अमेरिका के बारे में बहुत कम लिखा था। मार्क्स ने शुरुआती औपनिवेशिक यात्राओं का विश्लेषण किया जो 15वीं शताब्दी के अंत में शुरू हुई थीं। इस विस्तार की प्रेरक शक्ति थी व्यापारिक पूँजी जो यूरोपीय देशों में उत्पादन की प्राक्-पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के साथ सह-अस्तित्व में थी। इंग्लैंड में 17वीं शताब्दी में बुर्जुआ वर्ग प्रमुख वर्ग के रूप में स्थापित हुआ। लेकिन बुर्जुआ वर्ग के बीच अभी भी व्यापारिक पूँजी का प्रभुत्व था जिसने इंग्लैंड के नए बुर्जुआकृत अभिजात्य वर्ग, जिसका प्रतिनिधित्व व्हिग अभिजात्य वर्ग (Whig aristocrats) करता था, के साथ गठबंधन कर लिया था। मार्क्स ने उपनिवेशवाद के दूसरे चरण की शुरुआत की पहचान 18वीं सदी के अंतिम दौर में की थी। मार्क्स इस दौर में पिछड़े क्षेत्रों में पूँजीवादी विस्तार के विभिन्न पहलुओं पर काम नहीं कर सके, इसलिए हमें एशिया में, ख़ासकर भारत में और गौण रूप से चीन में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की भूमिका के बारे में उनके पत्राचार पर ही निर्भर होना पड़ेगा।

मार्क्स इस बात से वाकिफ़ थे कि बहुत से प्राक्-पूँजीवादी साम्राज्यों में भी सामराजी विस्तार (imperial expansion) का रुझान था। हालाँकि, उन्होंने इस प्राक्-पूँजीवादी साम्राज्य विस्तार और पूँजीवादी साम्राज्यवादी विस्तार के बीच में स्पष्ट रूप से अंतर किया था। साम्राज्यवादी विस्तार इस मायने में अलग था कि विस्तार के इस रुझान के लिए किसी भी तरह के नैतिक, सांस्कृतिक या सभ्यताजनक अवरोध नहीं थे और मुनाफ़े की अतृप्य लोलुपता यानि सबसे महंगा बेचना और सबसे सस्ता खरीदना उनके इस रुझान की प्रेरक शक्ति थी। मार्क्स टिप्पणी करते हैं कि "सभ्य" पूँजीवादी उपनिवेशवादियों की तुलना में "अर्द्ध-बर्बरों" और "बर्बरों" का दृष्टिकोण कहीं ज्यादा संयमित और नैतिकतापूर्ण था। चीन के साथ अफ़ीम के व्यापार के बारे में मार्क्स टिप्पणी करते हैं:

> "जहाँ अर्द्ध-बर्बर नैतिकता के सिद्धांत पर काम कर रहा था, उसके विपरीत सभ्य स्व के सिद्धांत पर चल रहा था...प्राचीन दुनिया का प्रतिनिधि नैतिक इरादों से प्रेरित जान पड़ता है, जबकि ताकतवर आधुनिक समाज का प्रतिनिधि सबसे सस्ते बाज़ारों में ख़रीदने और सबसे महँगे बाज़ारों में बेचने के विशेषाधिकार के लिए लड़ता है।" (Karl Marx, Frederich Engels, *Karl Marx on Colonialism and Modernization*, Anchor Books, New York, edited by Shlomo Avineri, 1969, p. 343-44) (अनुवाद हमारा)

मार्क्स ने विदेशी व्यापार पर अपने लेखन में नव-क्लासिकी और "पारस्परिक लाभों" पर आधारित रिकार्डो के विदेशी व्यापार के तुलनात्मक लागत के सिद्धांत का खंडन किया है। मार्क्स ने दिखाया कि विदेशी व्यापार से होने वाला मुनाफ़ा पारस्परिक लाभों पर आधारित नहीं था और केवल बलप्रयोग, दबाव, लूटमार और डाका डालने से ही संभव था।

मार्क्स के लिए, औद्योगिक पूँजीवाद के आगमन के पूर्ववर्ती काल का उपनिवेशवाद आदिम संचय का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत और इंग्लैंड में पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली की पूर्व-शर्त था। मार्क्स बताते हैं:

> इस बात में कोई संशय नहीं है...कि भौगोलिक खोजों के साथ वाणिज्य के क्षेत्र में होने वाली 16वीं और 17वीं शताब्दियों की महान क्रांतियों ने व्यापारिक पूँजी के विकास को त्वरित कर दिया और सामंती से पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली में संक्रमण को तीव्र करने में इन क्रांतियों की महती भूमिका रही। विश्व बाज़ार का अचानक विस्तार, परिसंचरित मालो (commodities) का बहुलीकरण, एशिया के उत्पादों और अमेरिका के खजानों पर कब्ज़ा कर लेने का यूरोपियाई राष्ट्रों का प्रतिस्पर्धी उत्साह - उत्पादन पर पड़ी सामंती बेड़ियों को तोड़ने में इन सभी का योगदान रहा।" (Karl Marx, *Capital,* volume-3, Progress Publishers, Moscow, 1978 Reprint, p. 332-33) (अनुवाद हमारा)

मार्क्स ने यह भी स्पष्ट तौर पर कहा कि औद्योगिक पूँजीवाद विदेशी व्यापार और विश्व बाज़ार के बिना विकसित नहीं होता है। उनका मानना था कि 'बुर्जुआ समाज का एक विशिष्ट कार्य है विश्व बाज़ार की स्थापना (कम से कम रूपरेखा में ही) और विश्व बाज़ार पर आधारित उत्पादन।' (मार्क्स का एंगेल्स को पत्र, 8 अक्टूबर, 1858)। यूरोप के देशों में पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के मुख्य उत्पादन प्रणाली होने के पहले एक विश्व बाज़ार और यूरोप और दुनिया के अन्य क्षेत्रों के बीच में विदेशी व्यापार का अस्तित्व मौजूद था। हालाँकि, औद्योगिक पूँजीवाद के आगमन के साथ ही विदेशी बाज़ार, विश्व बाज़ार और उपनिवेशवाद की संरचना में गहन परिवर्तन आए। औद्योगिक पूँजीवाद के आगमन के पूर्ववर्ती काल में, विदेशी व्यापार लूट और दबाव की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ था, जिसने विशेषतः इंग्लैंड और सामान्यतः यूरोप में पूँजीवादी विकास के लिए आदिम संचय की प्रक्रिया में योगदान दिया। औद्योगिक पूँजीवाद के आगमन के पहले इस उपनिवेशवाद की प्रक्रिया के फलस्वरूप, एक विश्व बाज़ार अस्तित्व में आया। जिस समय यूरोप में औद्योगिक पूँजीवाद का विकास हो रहा था, विदेशी व्यापार के माध्यम से इससे जुड़े अन्य क्षेत्रों में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। दुनिया के अन्य क्षेत्रों में पूँजीवादी विस्तार का प्रसार इन क्षेत्रों में उत्पादन को लगातार माल उत्पादन (commodity production) में परिवर्तित कर रहा था, हालाँकि यह माल उत्पादन मुख्यतः विभिन्न प्रकार की प्राक्-पूँजीवादी संरचनाओं के अंतर्गत ही हो रहा था। इन क्षेत्रों ने पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली का विकास तो नहीं किया मगर उनका माल उत्पादन यूरोप की औद्योगिक पूँजी के परिपथ का हिस्सा बन गया। मार्क्स कहते हैं:

> "औद्योगिक पूँजी (चाहे वो मुद्रा-पूँजी हो या माल-पूँजी) का परिपथ अपनी संचरण की प्रक्रिया में, जिसमें औद्योगिक पूँजी मुद्रा या मालो के रूप में काम करती है, सामाजिक उत्पादन (जिस हद तक उसमें मालो का उत्पादन होता है) के सर्वाधिक विविध प्रकार के माल संचरण को पार कर जाती है। इससे फर्क नहीं पड़ता कि माल - ग़ुलामी पर आधारित, या किसानों पर आधारित (चीनी, भारतीय रैयत), या कम्यूनों पर आधारित (डच ईस्ट इंडीज़), या राज्य उद्यमों पर आधारित (जैसे कि रूसी इतिहास के आरंभिक युगों में दासत्व के आधार पर अस्तित्व में थीं), या अर्ध-बर्बर शिकारी जनजातियों आदि पर आधारित उत्पादन की प्रक्रिया के पैदावार थे। ...उत्पादन की प्रक्रिया का चरित्र जिसमें से वे उत्पन्न होते हैं वह महत्वहीन है। वे बाज़ार में मालो के रूप में होते हैं, और मालो के रूप में औद्योगिक पूँजी के परिपथ में और साथ ही इसमें निहित अधिशेष मूल्य के संचरण में प्रवेश करते हैं। इसलिए यह मालो की उत्पत्ति का सार्वभौमिक चरित्र, और विश्व बाज़ार के रूप में बाज़ार का अस्तित्व है, जो औद्योगिक पूँजी के संचरण की प्रक्रिया को अलग करता है। (Karl Marx, *Capital*, volume-2, Progress Publishers, Moscow, 1986 Reprint, p. 113) (अनुवाद हमारा)

मार्क्स ने यह भी स्पष्ट तौर पर कहा कि औद्योगिक पूँजी का, विदेशी व्यापार और विश्व बाज़ार के बिना, अस्तित्व संभव नहीं है। विश्व स्तर पर पूँजी के संचय की प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए मार्क्स इस तथ्य के प्रति सजग थे कि विश्व स्तर पर पूँजी संचय बहुत असमान रूप से विकसित होता है। हालाँकि वे इस असमानता की गहराई में नहीं जा सके। अगर वे *पूँजी* के विश्व बाज़ार और क्रेडिट (credit) पर योजनाबद्ध खण्डों को पूरा कर पाए होते, तो संभवतः इन मुद्दों की विस्तृत चर्चा की होती।

जैसे-जैसे ज्यादा से ज्यादा उत्पादन माल उत्पादन में बदलता जाता है (प्राक्-पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के अंतर्गत भी), श्रम का एक अंतरराष्ट्रीय विभाजन अस्तित्व में आता है। श्रम का अंतरराष्ट्रीय विभाजन अपरिहार्य ढंग से ऐसे क्षेत्रों के बँटवारे के रूप में सामने आता है जिनमें ऐसे क्षेत्र होते हैं जिनमें औद्योगिक पूँजीवाद विकसित हो चुका है और ऐसे क्षेत्र होते हैं जो कच्चे माल और कृषि उत्पादों के

आपूर्तिकर्ता बन जाते हैं, ये एक ऐसा स्वरुप है जो औद्योगिक पूँजीवाद के केंद्रों की ज़रूरतों के लिए अनुकूल होता है। मार्क्स का यह अवलोकन उनके द्वारा आयरलैंड की व्याख्या 'इंग्लैंड के कृषि जनपद' के रूप में किए जाने के रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

जैसा कि हमने पहले ज़िक्र किया है, औद्योगिक पूँजी के विकास से उपनिवेशवाद की संरचना और कार्यप्रणाली भी बदलती है। मार्क्स तर्क देते हैं कि 18वीं शताब्दी के मध्य तक इंग्लैंड के बुर्जुआ वर्ग के विभिन्न हिस्सों यानि व्यापारिक पूँजी (moneyocracy), भूस्वामी वर्ग (aristocracy) और मैन्युफैक्चरर (millocracy) के हित समान थे। हालाँकि 18वीं शताब्दी के अंतिम दौर से औद्योगिक पूँजीवाद के आगमन ने इन हितों का बँटवारा कर दिया और औद्योगिक पूँजीवादी वर्ग का पुराने भू-स्वामी अभिजात्य वर्ग और व्यापारिक पूँजीपति वर्ग के गठबंधन के साथ संघर्ष शुरू हो गया। मार्क्स ने 1853 में लिखा:

> "ग्रेट ब्रिटेन के सत्तारूढ़ वर्गों की अभी तक, भारत की प्रगति में एक आकस्मिक, अल्पकालिक और अपवादस्वरूप ही कोई रूचि रही है। भूस्वामी वर्ग इसे जीतना चाहता था, व्यापारिक पूँजी इसे लूटना चाहती थी और मैन्युफैक्चरर इसे सस्ते में बेचना चाहता था। लेकिन अब परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। मैन्युफैक्चरर वर्ग ने पाया है कि भारत का एक पुनरुत्पादक देश में रूपांतरण उनके लिए काफ़ी महत्त्व रखता है, और इसलिए भारत को सिंचाई और आतंरिक संचार के सामुद्राोंं से उपकृत करना आवश्यक है।" (Karl Marx, 'The Future Results of the British Rule in India',in *Karl Marx on India*, Tulika Books, New Delhi, 2006, p. 47) (अनुवाद हमारा)

मार्क्स स्पष्ट तौर पर समझते थे कि औद्योगिक बुर्जुआ वर्ग के लिए भारत को महज़ लूटने के बजाय, यहाँ एक बाज़ार बनाना भी आवश्यक था। मार्क्स यह भी समझते थे कि अंग्रेजों द्वारा संचार और परिवहन के विकास के चलते, ख़ासकर रेलवे जिसे मार्क्स ने 'भारत में आधुनिक उद्योग के अग्रदूत' के रूप में देखा, की वजह से जो सीमित पूँजीवादी विकास हुआ वह 'निकृष्टतम हितों' से प्रेरित था और इससे संपूर्ण पूँजीवादी विकास नहीं होता बल्कि भविष्य में पूँजीवादी विकास की केवल आधारशिला पड़ेगी। मार्क्स टिप्पणी करते हैं:

> "बुर्जुआ वर्ग को मजबूरी में जो भी करना पड़े, इससे आम जनता का न ही उद्धार होगा और न ही उनकी सामाजिक परिस्थितयों में सुधार आएगा, जोकि न केवल उत्पादक शक्तियों के विकास पर बल्कि लोगों के द्वारा उनके विनियोजन पर भी निर्भर करेगा। लेकिन इतना तो वो ज़रूर कर जाएँगे कि इन दोनों के लिए ही वो भौतिक आधार का निर्माण कर देंगे। क्या बुर्जुआ वर्ग ने कभी इससे अधिक कुछ किया है? क्या व्यक्तियों और लोगों को खून और गंदगी के कीचड, दुर्गति और पतन में घसीटे बिना इसने कभी भी कोई प्रगति की है?" (*ibid,* p. 49) (अनुवाद हमारा)

मार्क्स मानते थे कि पूँजीवाद के विकास के ये भौतिक आधार वास्तविक पूँजीवादी विकास में तब तक तब्दील नहीं किए जा सकते जब तक कि ब्रिटेन में शासक वर्ग ही नहीं बदल जाता यानि जब तक वहाँ के बुर्जुआ वर्ग के शासन को सर्वहारा वर्ग के द्वारा तहस-नहस नहीं कर दिया जाता, या जब तक खुद भारत के लोग ही अंग्रेजी शासन की दासता को उखाड़ नहीं फेंकते। ऊपर उद्धृत किए गए आलेख में ही (The Future Results of the British Rule in India) मार्क्स कहते हैं:

> "ब्रिटिश बुर्जुआ वर्ग के द्वारा भारतीयों के बीच समाज के जो नए तत्त्व बिखराए गए हैं, वे उनका लाभ तब तक नहीं उठा पाएँगे, जब तक कि खुद ग्रेट ब्रिटेन में ही औद्योगिक सर्वहारा वर्ग वहाँ के शासक वर्ग को उखाड़ नहीं फेंकता, या जब तक हिंदू खुद इतने ताकतवर न हो जाएँ कि वो अंग्रेजों को पूरी तरह से उखाड़ फेंकें।" (*ibid,* p. 49) (अनुवाद हमारा)

यह सत्य है कि नीचे आत्मनिर्भर सुखद जीवन शैली के ग्राम समुदाय और ऊपर निरंकुश तानाशाही के शासन (despotic authoritarian rule) पर आधारित मार्क्स की उत्पादन की एशियाई प्रणाली का सिद्धांत सही नहीं था। इसमें तर्क पेश किया गया था कि पूँजीवाद के विकास के लिए एशियाई समाजों में किसी भी स्वकेंद्रित विकास की संभावनाएँ नहीं थीं और कोई बाह्य शक्ति ही (अर्थात्, उन्नत पूँजीवाद) उत्पादन की एशियाई प्रणाली को तहस-नहस कर पूँजीवाद के विकास की संभावनाओं को उन्मुक्त कर सकती थी। हालाँकि, मार्क्स के ऐतिहासिक

भौतिकवाद के सिद्धांत के आधार पर ही इस विचार को अस्वीकार किया जा सकता है। इस सिद्धांत के अनुसार, किसी भी समाज के विकास का *मुख्य चालक* उसके उत्पादक शक्तियों और उत्पादन संबंधों के बीच का अंतरविरोध होता है जो वर्ग समाजों में वर्ग संघर्ष के रूप में अभिव्यक्त होता है। मार्क्स ने स्वयं ही भारत में कई तरह के ग्राम समुदायों के अस्तित्व को स्वीकार किया था और उनमें से कुछ में भूमि का निजी स्वामित्व भी था (Karl Marx, Frederich Engels, *Karl Marx on Colonialism and Modernization*, Anchor Books, New York, edited by Shlomo Avineri, 1969, p. 451). वे इस अवलोकन को *पूँजी, खंड-1* में भी दोहराते हैं। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि भारतीय समाज में वर्ग, राज्य और असमानता भी मौजूद है। यदि इन सभी का अस्तित्व मौजूद था तो मार्क्स की ही पद्धति के आधार पर वर्ग संघर्ष के अस्तित्व और समाज के स्वकेंद्रित तरीके से पूँजीवादी विकास की दिशा में विकसित होने से कोई इंकार नहीं कर सकता। हालाँकि, मार्क्स स्वयं भी अपने एशियाई उत्पादन के सिद्धांत को लेकर सशंकित थे जैसा कि कोवालेव्स्की की किताब की उनकी टिप्पणियों से स्पष्ट हो जाता है *(Communal Landholding,*1879*)*। अपनी टिप्पणियों में, मार्क्स रेखांकित करते हैं कि भारतीय ग्राम समुदाय में वर्गों का विकास हो चुका था और इससे इन समुदायों के अंदर अंतरविरोध पैदा हो रहे हैं। इसलिए मार्क्स के लिए आत्म-निर्भर भारतीय ग्राम समुदाय अब स्वकेंद्रित गति से पूरी तरह से मुक्त कोई स्थिर इकाई नहीं रह गए थे। इसके अलावा, मार्क्स ने *पूँजी* के तीसरे खंड में उल्लेख किया था कि एशिया में सामाजिक परिस्थितियों के स्थिर चरित्र का स्रोत राज्य के द्वारा वस्तु के रूप में लिया जाने वाला भूमि लगान (land-tax in kind) था। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि जिन पांडुलिपियों को एकत्रित कर एंगेल्स ने तीसरा खंड पूरा किया था वो 1870 के दशक के पहले की थीं। हालाँकि, 1870 के दशक में माउंटस्टुअर्ट एल्फिंस्टन के *History of India* के अध्ययन संबंधी उनकी टिप्पणियों से पता चलता है कि वे यह तथ्य जान चुके थे कि मुग़ल बादशाह अकबर नगद में कर (tax in cash) लिया करता था। इस सूचना ने मार्क्स की आरंभिक अवधारणाओं को निश्चित तौर पर बदला। मार्क्स की टिप्पणियों और पांडुलिपियों से ऐसे कई प्रमाण प्रस्तुत किए जा सकते हैं जो यह साबित करते हैं कि एशियाई प्रणाली और प्राच्य निरंकुशता (Oriental Despotism) के अपने पुराने सिद्धांतों के बारे में मार्क्स गंभीर रूप से सशंकित हो चले थे। यह संक्षिप्त प्रसंगांतर महज़ यह दिखाने के लिए था कि पाश्चात्य अकादेमिया में सामान्य रूप से व्यापत यह धारणा कि मार्क्स जीवनपर्यंत उत्पादन की एशियाई प्रणाली की अपनी आरंभिक अवधारणा पर ही टिके रहे, गलत है। यह इसलिए भी ज़रूरी है क्योंकि कुछ विशेषज्ञों ने एशियाई समाजों पर साम्राज्यवाद के प्रभाव की मार्क्स की अवधारणा के बारे में बेहद भ्रामक समझ बना ली थी। वे त्रुटिपूर्ण दावा करते हैं कि मार्क्स ने इन समाजों पर साम्राज्यवाद के प्रभाव का मुख्यतः सकारात्मक पहलू ही देखा। हमने ऊपर यह दिखाने के लिए विस्तार से उद्धृत किया है कि यूरोपीय पूँजीवाद के विस्तार और इन क्षेत्रों पर पड़ने वाले इसके प्रभाव का मार्क्स का मूल्यांकन बेहद द्वंद्वात्मक था और लगातार विकासशील था।

आइए अब साम्राज्यवाद और पूँजीवादी विकास के उनके सिद्धांत के उन पहलुओं पर चर्चा करते हैं जिन्होंने लेनिन, बुखारिन, लक्ज़मबर्ग और हिल्फ़र्डिंग जैसे भावी मार्क्सवादियों के द्वारा साम्राज्यवाद के विश्लेषण की नींव तैयार की। मार्क्स ने दिखाया कि औद्योगिक पूँजीवाद के विकास का अर्थ है श्रम का वास्तविक अधीनीकरण और सापेक्षिक अधिशेष मूल्य की निकासी। इसका आशय है पूँजी का विस्तारित पुनरुत्पादन एवं संचयन जो पूँजीपति वर्ग को लाभप्रद निवेश के लिए बाज़ारों और अवसरों की खोज के लिए और साथ ही कच्चे माल के स्रोत खोजने के लिए भी बाध्य करता है। उन्होंने दिखाया कि मालो के निर्यात का कारण केवल बढ़ते उत्पादन का वास्तवीकरण ही नहीं था बल्कि विदेशी बाज़ारों में उनके मूल्य से अधिक कीमतें मिलना भी एक वजह थी। मार्क्स के अनुसार पूँजी के निम्न आवयविक संघटन (lower organic composition) के कारण इन क्षेत्रों में मुनाफ़े की ऊँची दर ही इन पिछड़े क्षेत्रों में पूँजी निर्यात की मुख्य प्रेरक शक्ति थी। कुल मिलाकर, इन क्षेत्रों से सस्ते कच्चे माल और अनाज के आयात की वजह से अचल पूँजी के तत्त्व सस्ते हो गए और मुख्य दिहाड़ी के सामान को सस्ता कर दिहाड़ी कम कर दी गई। विदेशी बाज़ारों की खोज और निम्न आवयविक संघटन वाले क्षेत्रों में लाभप्रद निवेश के अवसर, इन दोनों कारकों की वजह से अपरिहार्य रूप से उपनिवेशों में साम्राज्यवादी वर्चस्व स्थापित हुआ और परिणामस्वरुप इन औपनिवेशीकृत क्षेत्रों का असंतुलित विकास हुआ। हम देखेंगे कि पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के ये सारभूत रुझान ही वो रुझान थे जिनकी वजह से वित्तीय इज़ारेदारी पूँजी का उदय हुआ, जैसा कि बाद के जाने-माने मार्क्सवादी सिद्धान्तकारों ने पाया था। मार्क्स ने दिखाया कि एक तरफ़ तो औद्योगिक पूँजी ने व्यापारिक पूँजी की इज़ारेदारी ख़त्म की, मगर दूसरी ओर पूँजी के सांद्रण और केंद्रीकरण के कारण खुद इसमें भी

इज़ारेदारी की तरफ़ ही विकसित होने का रुझान था। इस तरह से "मुक्त" प्रतिस्पर्धा के दौर में ही, मार्क्स ने इज़ारेदारी के तरफ़ बढ़ने के रुझान की शिनाख्त की थी। मार्क्स ने लिखा:

> "पूँजी के थैलीशाहों की लगातार घटती संख्या के साथ...दुख, उत्पीड़न, गुलामी, पतन, शोषण का अंबार बढ़ता जाता है; लेकिन साथ ही मजदूर वर्ग, जिसकी संख्या लगातार बढ़ रही है, उसका विद्रोह भी बढ़ता जाता है, और जिसे पूँजीवादी उत्पादन प्रक्रिया ने ही अनुशासित, एकजुट और संघटित किया है। पूँजी की इज़ारेदारी उत्पादन पद्धति की ही बेड़ी बन जाता है, जो इसी के तले ही विकसित हुई है और फली-फूली है। उत्पादन के साधनों का केंद्रीयकरण और श्रम का सामाजीकरण अंततः ऐसे बिंदु पर पहुँच जाता है जहाँ वो अपने पूँजीवादी आवरण से असंगत हो जाते हैं।" (Karl Marx, *Capital*, volume-1, Progress Publishers, Moscow, p. 715) (अनुवाद हमारा)

जैसा कि मार्क्स के कुछ अनुयायियों ने किया (लेनिन के अपवाद को छोड़कर), मार्क्स ने इज़ारेदारी को प्रतिस्पर्धा के निषेध के रूप में देखने की गलती नहीं की। *पूँजी* लिखने के काफ़ी पहले से ही मार्क्स इस तथ्य के प्रति सजग थे। मार्क्स *Poverty of Philosophy* में लिखते हैं:

> "व्यावहारिक जीवन में हमें न केवल प्रतिस्पर्धा, इज़ारेदारी, और उनके बीच अंतरविरोध दिखता है बल्कि उनका संश्लेषण भी, जोकि एक जड़सूत्र नहीं बल्कि गति है। इज़ारेदारी से प्रतिस्पर्धा पैदा होती है और प्रतिस्पर्धा से इज़ारेदारी पैदा होती है। इज़ारेदारियाँ एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करती हैं; प्रतिस्पर्धी इज़ारेदार बन जाते हैं...और किसी राष्ट्र के इज़ारेदारों के ख़िलाफ़ सर्वहाराओं की संख्या जितनी बढ़ती है, विभिन्न राष्ट्रों के इज़ारेदारों के बीच प्रतिस्पर्धा उतनी ही अंधाधुंध हो जाती है। संश्लेषण ऐसा होता है कि इज़ारेदारी लगातार प्रतिस्पर्धा के संघर्ष में शामिल होकर ही अपना अस्तित्व बरक़रार रख सकती है।" (Karl Marx, *The Poverty of Philosophy,* Foreign Languages Press, Peking, Third Edition, 1977, p. 146-47) (अनुवाद हमारा)

इस तरह मार्क्स के अनुसार, इज़ारेदारी मुक्त प्रतिस्पर्धा के विपरीत नहीं है; यह मुक्त प्रतिस्पर्धा से ही पैदा होती है और इसी के आधार पर ही बढ़ती जाती है, अलबत्ता इस प्रक्रिया में ये मुक्त प्रतिस्पर्धा का स्वरुप ज़रूर बदल देती है। अर्थशास्त्र की हर शाखा में प्रतिस्पर्धी पूँजी की घटती संख्या से पूँजी के बीच प्रतिस्पर्धा के तौर-तरीकों में परिवर्तन आते ही हैं। ये इज़ारेदारियों के बीच प्रतिस्पर्धा को और तीव्र कर देता है; ये एकल छोटी पूँजी की विख्यात "स्वतंत्रता" को नष्ट कर देता है। मार्क्स ने पूँजी के सांद्रण और केंद्रीकरण की प्रक्रिया में अंतरनिहित द्वंद्वात्मक गति की पहचान की। मार्क्स के अनुसार, छोटी पूँजी के बीच मुक्त प्रतिस्पर्धा की प्रक्रिया से उत्पादन की हर शाखा में इज़ारेदारी का बनना कोई एकरेखीय क्रमिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि पूँजी के संक्रेंद्रण और केंद्रीकरण के दो चरणों को दर्शाती हुई एक द्वंद्वात्मक प्रक्रिया है। इसी से हमें यह भी समझ में आता है कि क्यों इज़ारेदारी की प्रक्रिया से कोई विश्व ट्रस्ट या आदर्श इज़ारेदारी नहीं बन सकती और क्यों यह प्रक्रिया अपने आप में प्रतियोगिता का ही निषेध नहीं हो सकती। एक तरफ़ तो मार्क्स यह देखते हैं कि छोटी पूँजी की स्वतंत्रता नष्ट हो जाती है, इज़ारेदारियों के बीच मुक्त प्रतिस्पर्धा सीमित हो जाती है एवं और ज्यादा घनीभूत रूप में दोबारा उभर कर आती है और यह भी कि सामान्यीकृत माल उत्पादन की परिस्थितियों के अंतर्गत इज़ारेदारी कभी भी आदर्श नहीं हो सकती। आइए देखते हैं कि मार्क्स का इस बारे में क्या कहना है:

> "सामाजिक पूँजी का विकास कई एकल पूँजी के विकास से प्रभावित होता है। बाकी परिस्थितियों को अचर रखा जाए, तो एकल पूँजी और उसके साथ उत्पादन के साधनों का सांद्रण ऐसे अनुपात में बढ़ता है कि वो कुल सामाजिक पूँजी के विभाज्य अंग बन जाते हैं। साथ ही, मूल पूँजी के हिस्से खुद को पृथक कर लेते हैं और नए स्वतंत्र पूँजी के रूप में काम करने लगते हैं। अन्य कारणों के अलावा, पूँजीवादी परिवारों के अंदर संपत्ति का विभाजन इस क्षेत्र में एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसलिए पूँजी के संचय के साथ, कम या ज़्यादा संख्या में पूँजीपतियों की संख्या बढ़ती है...इसके साथ होने वाले संचय और सांद्रण न केवल कई बिंदुओं पर बिखरे हैं, बल्कि हर कार्यरत पूँजी की वृद्धि को पुरानी पूँजी के नए खंड होने से ख़तरा पैदा होता है। इसलिए संचय, एक तरफ़ उत्पादन के साधनों के बढ़ते सांद्रण और श्रम पर नियंत्रण के रूप में और दूसरी तरफ़ कई एकल पूँजी के एक दूसरे से प्रतिकर्षण के रूप में परिलक्षित होता है।

"कुल सामाजिक पूँजी का कई एकल पूँजी में विखंडन या इसके खण्डों का एक दूसरे से प्रतिकर्षण, उनके बीच के आकर्षण से प्रभावहीन हो जाता है। पर इस आकर्षण का ये मतलब उत्पादन के साधनो का सामान्य सांद्रण और श्रम पर ज्यादा नियंत्रण नहीं है, जोकि संचय के ही समान है। यह पहले से ही निर्मित पूँजी का सांद्रण है, उनकी एकल स्वतंत्रता का विनाश है, पूँजीपति का पूँजीपति के द्वारा संपत्ति का स्वामित्वहरण है, कई छोटी पूँजी का कुछ बड़ी पूँजी में रूपांतरण है।" (Karl Marx, *Capital*, volume-1, Progress Publishers, Moscow, p. 585-86) (अनुवाद हमारा)

जैसा कि हम देख सकते हैं, मार्क्स को स्पष्ट था कि पूर्ण इज़ारेदारी का कोई चरण संभव नहीं है क्योंकि पूँजी के सांद्रण और केंद्रीकरण की प्रक्रिया में आकर्षण और प्रतिकर्षण के बीच लगातार द्वंद्व चलता रहता है। यह आदर्श प्रतिस्पर्धा (जिसको मार्क्स ने कभी नहीं माना) से आदर्श इज़ारेदारी (जोकि मार्क्स के अनुसार पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के अनुरूप नहीं है) में जाने की कोई एकरेखीय प्रक्रिया नहीं है। इसलिए मार्क्स के अनुसार, आदर्श इज़ारेदारी यानि विश्व ट्रस्ट (हिल्फ़र्डिंग की शैली में) का चरण सैद्धांतिक रूप से भी नहीं संभव है।

मार्क्स के अनुसार क्रेडिट तंत्र (credit system) और बैंकों के बढ़ते महत्त्व पर विशेष रूप से ध्यान दिए जाने की ज़रूरत है। ख़ासकर, *पूँजी* के तीसरे खंड में मार्क्स यह दिखाते हैं कि पूँजी के बढ़ते सांद्रण और केंद्रीकरण और अर्थव्यवस्था की हर शाखा में लगी हुई पूँजी की घटी हुई संख्या के साथ ही क्रेडिट तंत्र की भूमिका बेहद बढ़ जाएगी। उत्पादन का बढ़ता स्तर उद्योग की किसी भी शाखा में प्रतिस्पर्धियों से लड़ने के लिए या एक नया उद्यम खड़ा करने के लिए भी बेहद बड़े निवेश को अनिवार्य बना देगा। इससे क्रेडिट संस्थाओं, वित्तीय महाप्रभुओं और बैंकों का महत्त्व बहुत बढ़ जाएगा। 'सामान्य तौर पर पूँजी' का विश्लेषण करते समय *पूँजी* के पहले खंड में भी मार्क्स की इस संबंध में दूरदर्शिता उल्लेखनीय है:

"इसके अलावा, पूँजीवादी उत्पादन के साथ एक पूरी तरह से नई ताकत का जन्म होता है -- क्रेडिट तंत्र, जो पहले चरण में संचय के विनम्र सहयोगी की तरह चुपके से प्रवेश करता है, और कई अदृश्य तरीकों से बड़ी या छोटी राशि के रूप में समाज के सतह पर बिखरे हुए मुद्रा संसाधन को इकट्ठा कर उससे एकल या संबद्ध, दोनों किस्म के पूँजीपतियों की मदद करता है; लेकिन जल्द ही ये प्रतिस्पर्धा के युद्ध में एक खतरनाक हथियार बन जाता है और अंततः पूँजी के संकेंद्रण के लिए एक विशाल सामाजिक तंत्र में परिवर्तित हो जाता है।

"पूँजीवादी उत्पादन और संचय के संगत, संकेंद्रण के दो ताकतवर तरीके विकसित होते हैं -- प्रतिस्पर्धा और क्रेडिट। साथ में संचय में वृद्धि, संकेंद्रण के लिए उत्तरदायी सामग्री यानि एकल पूँजी में भी वृद्धि करता है, जबकि एक तरफ़ पूँजीवादी उत्पादन का विस्तार सामाजिक आवश्यकता पैदा करता है और दूसरी तरफ़ उन तकनीकी साधनों को भी बढ़ाता हैं जोकि विशाल औद्योगिक उद्यमों के लिए आवश्यक होते हैं जिनके निर्माण के लिए पूँजी के पूर्ववर्ती संकेंद्रण की आवश्यकता होती है।" (*ibid,* p. 587) (अनुवाद हमारा)

जाहिर है, मार्क्स देख पा रहे थे कि निवेश के क्षेत्र में बैंकों का प्रभुत्व हो जाएगा। इसी तरह, इस चरण में जॉइंट स्टॉक कंपनियों का स्वरुप भी काफ़ी महत्त्वपूर्ण हो जाएगा। *पूँजी* के खंड 1 और ख़ासकर खंड 3 में मार्क्स पूँजीवाद के इज़ारेदारी चरण के बारे में कई पूर्वानुमान लगाते हैं। निम्नलिखित उद्धरण एक उदाहरण है जिसमें जॉइंट स्टॉक कंपनियों और बैंकों की भूमिका की तरफ़ इशारा करते हुए बुर्जुआ वर्ग में श्रम के बढ़ते हुए विभाजन, पूँजी-स्वामियों के बढ़ते हुए *परजीवी* चरित्र और उत्पादन के बढ़ते सामाजीकरण के साथ इज़ारेदारी के चरण में उनके ग़ैर-ज़रूरी हो जाने की तरफ़ भी संकेत किया गया है:

"सामान्यतः स्टॉक कंपनियाँ -- जो क्रेडिट तंत्र से विकसित हुई होती हैं -- उनमें प्रबंधन के कार्यभार को पूँजी के स्वामित्व से पृथक करने का रुझान होता है, चाहे ये पूँजी खुद के स्वामित्व में हो या उधार ली गई हो...लेकिन चूँकि एक तरफ़ मुद्रा-पूँजीपति (जोकि महज़ पूँजी का स्वामी है) को कार्यरत पूँजीपति का सामना करना पड़ता है, जबकि खुद मुद्रा-पूँजी क्रेडिट में वृद्धि के साथ सामाजिक चरित्र अख्तियार कर लेती है, और जो बैंकों में संचित होती है और उसके मूल स्वामियों के बजाय बैंकों के द्वारा लोन

> के रूप में दी जाती है, और चूँकि दूसरी तरफ़, महज़ प्रबंधक जिसका पूँजी पर कोई अधिकार नहीं होता, चाहे उधार लेकर या किसी भी तरह से, वो कार्यरत पूँजीपति से संबद्ध सभी असली कामों को निपटाता है, इसलिए केवल कार्यरत ही बचता है और पूँजीपति उत्पादन प्रक्रिया से अनावश्यक होकर गायब हो जाता है।" (Karl Marx, *Capital*, Volume - 3, Progress Publishers, Moscow, 1978 Reprint, p. 387-88) (अनुवाद हमारा)

मार्क्स इस तथ्य से भली-भांति परिचित थे कि यह पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली और उत्पादन-संबंधों का निषेध नहीं है। उन्होंने इसे 'पूँजीवादी उत्पादन संबंधों के चौखटे के अंदर ही निजी संपत्ति का उन्मूलन' कहा था। उन्होंने तर्क किया कि जब यह अवस्था पहुँच जाती है तो यद्यपि पूँजीवादी उत्पादन संबंध और ज्यादा विकसित हो जाते हैं मगर उनका मूल स्वरुप जैसे का तैसा ही बना रहता है, जहाँ मजदूर वर्ग जॉइंट स्टॉक कंपनियों और बैंकों के रूप में पूँजी की संकेंद्रित सत्ता के आमने-सामने होता है, जहाँ 'स्वरुप' सामाजिक हो चुका है मगर हस्तगतकरण निजी ही बना रहता है। जैसे-जैसे यह पूँजीवादी 'सामाजीकरण' बढ़ता है, विलगाव भी बढ़ता जाता है। पूँजीवादी उत्पादन पद्धति का आंतरिक अंतरविरोध सर्वाधिक प्रखर रूप धारण कर लेता है। मार्क्स से मदद लेते हुए, लेनिन ने साम्राज्यवाद की अवस्था को एक संक्रमणकालीन चरण कहा था जिसमें उत्पादन के अप्रत्याशित सामाजीकरण और बैंकों के द्वारा अर्थव्यवस्था की विभिन्न शाखाओं के राष्ट्रीय स्तर के बहीखाताकरण से समाजवाद की मूलभूत पूर्व-शर्तें पूरी हो चुकी हैं और एक समाजवादी अर्थव्यवस्था चलाने के लिए तंत्र भी तैयार हो चुका है।

मार्क्स ने अवास्तविक पूँजी, सेक्योरिटी, स्टॉक, बांड इत्यादि (securities, stocks, bonds, etc.) जिसके प्रतिनिधि उदाहरण हैं, की वृद्धि और प्रकृति के बारे में बेहद शानदार पूर्वानुमान लगाया था। मार्क्स ने लिखा:

> "सरकारी बांड के साथ स्टॉक के स्वामित्व के अधिकारों के मूल्य की स्वतंत्र गति से ये भ्रम बढ़ जाता है कि जिस पूँजी या दावे पर उनका अधिकार है, उसके साथ ही बांड और स्टॉक भी वास्तविक पूँजी हैं। क्योंकि वो माल बन जाते हैं, जिनकी कीमत की खुद की अभिलाक्षणिक गति होती है और जो अपने तरीके से स्थापित होती है। वास्तविक पूँजी के मूल्य में बिना किसी परिवर्तन के (यद्यपि विस्तार में परिवर्तन हो भी सकता है) उनका बाज़ार-मूल्य उनके nominal मूल्य से अलग तरीके से निर्धारित किया जाता है। ये कागज भविष्य के उत्पादन के बारे में महज़ संचित दावों या कानूनी अधिकारों से ज्यादा कुछ नहीं दर्शाता, और जिसका मुद्रा या पूँजी मूल्य या तो कोई पूँजी नहीं दर्शाता, जैसा कि राज्य ऋण के मामले में होता है, या जिस वास्तविक पूँजी को ये दर्शाता है उससे स्वतंत्र रूप से विनियमित होता है।" (*ibid,* p. 467) (अनुवाद हमारा)

इस तरह किसी भी कींसियन अध्येता या ख़ुद कींस से पहले ही मार्क्स समझ गए थे कि इन वित्तीय उपकरणों (financial devices) का बाज़ार, माल के बाज़ारों से सापेक्षतः स्वतंत्र है। स्टॉक का मूल्य और कुछ नहीं बल्कि भविष्य के उत्पादन के अधिशेष मूल्य पर दावा है। वो पूँजी के वास्तविक मूल्य को इन अर्थों में नहीं दर्शाते कि मूल्य दो बार मौजूद है: उत्पादक पूँजी में और फिर स्टॉक में। यह उस मूल्य की नकल है और दूसरे, स्टॉक के मूल्य उत्पादक पूँजी के वास्तविक मूल्य से सामान्यतः काफ़ी ज्यादा होते हैं। संकट के समय में, स्टॉक के मूल्य और उत्पादक पूँजी के मूल्य में अंतर कम भी हो सकता है। यही कारण है कि वित्तीय बाज़ार अत्यधिक सट्टेबाज प्रवृत्ति के होते हैं।

स्पष्ट तौर पर, मार्क्स ने लेनिन और बुखारिन जैसे बाद के मार्क्सवादियों की तरह साम्राज्यवाद के कई लक्षणों की पहचान कर ली थी, यानि पूँजी के सांद्रण और केंद्रीकरण का नियम, विदेशी बाज़ारों को खोजने का रुझान जिससे इन बाज़ारों में ज्यादा से ज्यादा बिक्री की जा सके, ऐसे क्षेत्रों में पूँजी का निर्यात जहाँ पूँजी के निम्न आवयविक संघटन की वजह से निवेश के अवसर घरेलू बाज़ार से ज्यादा लाभप्रद हैं, कच्चे माल के स्रोतों पर इज़ारेदारी स्थापित करना और क्रेडिट तंत्र की ख़ासकर बैंकों की बढ़ती हुई भूमिका। हालाँकि, मार्क्स की विशेष रूप से इज़ारेदारी चरण और साम्राज्यवाद (यद्यपि आधुनिक अर्थों में उन्होंने कभी इस शब्द का प्रयोग नहीं किया) के बारे में टिप्पणियाँ उत्कृष्ट अंतर्दृष्टि के बावजूद बिखरी हुई और अधूरी हैं। मार्क्स ने साम्राज्यवाद के बारे में कोई संपूर्ण सिद्धांत नहीं विकसित किया क्योंकि मार्क्स के देहांत के समय इज़ारेदारी की परिघटना अभी पूरी तरह से स्पष्ट नहीं हुई थी। हालाँकि, जैसा कि हमने ऊपर तर्क करने की कोशिश की थी, पूँजीवादी उत्पादन पद्धति का उनका विश्लेषण, इसकी आंतरिक गतिकी और गति के नियम पूँजीवाद के इज़ारेदारी चरण यानि साम्राज्यवाद

के सिद्धांत की मूलभूत नींव तैयार करते हैं। पूँजीवाद के मूलभूत विस्तारवादी रुझानों यानि अनवरत चलने वाला संचय, सांद्रण और केंद्रीकरण, लाभप्रदता का संकट, बाज़ारों और कच्चे माल के स्रोतों की खोज की वजह से साम्राज्यवाद का उदय हुआ। इसीलिए मिलिओस और सोटाइरोपोलॉस ने इसे पूँजीवादी उत्पादन पद्धति का नया चरण मानने से इंकार किया है, बल्कि इसे पूँजीवादी सामाजिक निर्माण के क्रमिक विकास में एक नया चरण कहा है। (John Milios and Dimitris P. Sotiropoulos, *Rethinking Imperialism: A Study of Capitalist Rule*, Palgrave-Macmillan, 2009)

मार्क्स के अधूरे, अंतरिम और बिखरे हुए विचारों के कारण और इस तथ्य के कारण कि इन टिप्पणियों के कई तत्त्व अभी भी अधूरे और अस्पष्ट हैं, आरंभिक 20वीं सदी के उन भावी मार्क्सवादियों के बीच काफ़ी बहस हुई थी जिन्होंने वित्तीय इज़ारेदारी पूँजीवाद के दौर में पूँजीवाद का विश्लेषण किया। विभिन्न मार्क्सवादी सिद्धान्तकारों ने मार्क्स के सिद्धांत के विभिन्न पहलुओं पर जोर दिया और एक दूसरे से बहस की। इन विवादों में तीन सर्वाधिक विवादित मुद्दे थे: मार्क्स का मुनाफ़े की दर गिरने के रुझान का नियम (अब से LTFRP), वास्तवीकरण समस्या और विभागों के बीच असमानुपातिकता। जैसा कि हम देखेंगे, मार्क्स के संकट, पूँजी के निर्यात और इज़ारेदारीकरण के सिद्धांत का मूल LTFRP ही है। हम बाद में देखेंगे कि अन्य दो समस्याएँ यानि वास्तवीकरण और असमानुपातिकता की समस्याएँ खुद लाभप्रदता के संकट की ही लाक्षणिक अभिव्यक्तियाँ हैं। हालाँकि इतना निश्चित है कि साम्राज्यवाद के किसी भी सिद्धांत का सत्यापन केवल उसकी आलोचनात्मक व्याख्या मात्र से नहीं, बल्कि आज के दौर में साम्राज्यवाद की वास्तविकताओं की व्याख्या कर पाने और लेनिन के अंदाज़ में इसके ख़िलाफ़ वर्तमान सर्वहारा संघर्षों की क्रांतिकारी रणनीति प्रस्तुत कर पाने की क्षमता से भी साबित होगा।

हिल्फ़र्डिंग की 'Finance Capital '

साम्राज्यवाद और वित्तीय पूँजी के सवाल पर काम करने वाले पहले मुख्य मार्क्सवादी सिद्धान्तकार हिल्फ़र्डिंग थे जिनकी सर्वश्रेष्ठ मानी जाने वाली रचना *Finance Capital* 1909 में प्रकाशित हुई थी। बाद में चलकर लेनिन और बुखारिन के साम्राज्यवाद के सिद्धांतों के विकास में उनके सिद्धांत के कुछ अंश बेहद महत्त्वपूर्ण साबित हुए। रुडोल्फ़ हिल्फ़र्डिंग के पहले कार्ल काउत्स्की ने साम्राज्यवाद पर पहले 1884 और फिर 1901 में अल्पउपभोगवादी (underconsumptionist) अवस्थिति अपनाई, यद्यपि इस अवस्थिति को अपनाने के बावजूद वो क्रांतिकारी निष्कर्षों पर पहुँचे। हिल्फ़र्डिंग अल्पउपभोगवादी तर्क के प्रति सशंकित थे। जब हिल्फ़र्डिंग की अत्यंत महत्त्वपूर्ण रचना *Finance Capital* 1910 में प्रकाशित हुई, तो इसे ओटो बॉएर के द्वारा '*पूँजी* का अगला खंड' कहा गया; काउत्स्की ने प्रशंसा करते हुए समीक्षा लिखी (और इसमें भी अल्पउपभोगवादी तर्क प्रस्तुत किया) जिसमें उसने पूँजीवाद के समकालीन विकास के संदर्भ में इसे मार्क्स के द्वारा *पूँजी* में शुरू किए गए विश्लेषण का विस्तार बताया। लेनिन ने इसे 'बेहद मूल्यवान सैद्धांतिक विश्लेषण' कहा और बुखारिन ने इसे अपनी रचना *Imperialism and World Economy* के लेखन के 'आरंभिक बिंदु और मुख्य प्रेरणास्रोत' के रूप में देखा। उस काल में हिल्फ़र्डिंग की रचना निस्संदेह समकालीन पूँजीवाद के राजनीतिक अर्थशास्त्र की सबसे महत्त्वपूर्ण मार्क्सवादी रचना थी। गौरतलब है कि इसका बड़ा हिस्सा 1906 में ही पूरा हो गया था मगर ये 1910 में प्रकाशित हुई थी।

हिल्फ़र्डिंग की रचना में साम्राज्यवाद के विश्लेषण की सभी मौलिक श्रेणियाँ दी गई थीं, बाद में जिनका प्रयोग लेनिन और बुखारिन ने भी किया था, यद्यपि उनके विश्लेषण अलग-अलग थे और हिल्फ़र्डिंग की तुलना में उनकी रचनाओं की राजनीतिक शिक्षाएँ भिन्न थीं। ये मौलिक श्रेणियाँ थीं: सांद्रण और केंद्रीकरण के द्वारा इज़ारेदारियों का बनना, बैंक और औद्योगिक पूँजी के मिश्रण से वित्तीय पूँजी का उदय, बैंकों और पूँजी के निर्यात की बदली हुई भूमिका।

रुडोल्फ़ हिल्फ़र्डिंग की *Finance Capital* 'पूँजीवाद के बाद के चरण' की अभिलाक्षणिक विशेषताओं का विश्लेषण करती है। इन विशेषताओं में आता है क्रेडिट तंत्र का विस्तार, जॉइंट स्टॉक कंपनियों, ट्रस्टों, कार्टेलों और सिंडिकेटों का उदय, बैंकों का उदय और बैंक एवं औद्योगिक पूँजी के मिश्रण या एकीकरण से वित्तीय पूँजी का उभार, और वित्तीय पूँजी एवं स्टॉक कंपनियों के द्वारा मुक्त प्रतिस्पर्धा को सीमित कर दिया जाना। इन सभी घटनाओं की जड़ में सबसे महत्त्वपूर्ण कारक बैंक पूँजी और औद्योगिक पूँजी का मिश्रण है जिससे वित्तीय पूँजी का

उदय हुआ जिसने पूँजी के तीनों स्वरूपों यानि औद्योगिक पूँजी, वाणिज्यिक पूँजी और बैंक पूँजी का वित्तीय पूँजी के अंतर्गत एकीकरण कर दिया है। इन घटनाक्रमों ने पूँजीवादी व्यवस्था के कई ऐसे रुझानों को जन्म दिया जो 20 वीं सदी के पूँजीवाद को चिह्नित करते हैं। इन रुझानों में साम्राज्यवादी आर्थिक नीति का उभार शामिल है जिसमें प्रमुख तत्व हैं कार्टेलीकरण (cartellization), सुरक्षात्मक टैरिफ (protective tariff), पूँजी का निर्यात और पूँजीवादी राष्ट्र-राज्यों के द्वारा अपने आर्थिक क्षेत्र में विस्तार के लिए आपस में प्रतिस्पर्धा, जो बदले में पूँजीवादी राज्य की प्रकृति को मुक्त व्यापार के पक्षधर उदारवादी पूँजीवादी राज्य से एक ताकतवर और हस्तक्षेपवादी राज्य में परिवर्तित कर देता है। हिल्फ़र्डिंग लिखते हैं,

> "वित्तीय पूँजी को 'पूँजीवादी हितों के सामंजस्य' में कोई विश्वास नहीं होता और इसे भलीभांति पता होता है कि प्रतिस्पर्धा लगातार राजनीतिक ताकत के लिए संघर्ष में बदलती जा रही है...अब दुनिया में अपनी प्रभावी स्थिति बना लेना किसी के अपने राष्ट्र के लिए आदर्श होगा।" (Rudolf Hilferding, *Finance Capital: A Study of the Latest Phase of Capitalist Development*, Routledge and Kegan Paul, London, 1981 p. 335) (अनुवाद हमारा)

हिल्फ़र्डिंग का विश्लेषण मुद्रा (money) और क्रेडिट के विश्लेषण से शुरू होता है। सामान्यतः यह अध्याय किताब का सबसे कमजोर अध्याय माना जाता है क्योंकि हिल्फ़र्डिंग के द्वारा दिया गया मुद्रा का सिद्धांत त्रुटिपूर्ण था, जिसका ज़िक्र लेनिन ने अपनी इस रचना में किया है - *साम्राज्यवाद: पूँजीवाद की चरम अवस्था।* लेनिन ने साम्राज्यवाद पर अपनी टिप्पणियों में जाहिर किया है कि कैसे हिल्फ़र्डिंग मानते थे कि मुद्रा संचरण की प्रक्रिया में बिना किसी खुद के मूल्य के प्रवेश करती है और संचरण की प्रक्रिया में ही मूल्य धारण करती है। कई अन्य लोगों द्वारा इसकी अपर्याप्त होने के रूप में आलोचना की गई है। हालाँकि हम इन आलोचनाओं का विस्तृत ब्यौरा नहीं दे सकते। इस अध्याय में महत्त्वपूर्ण बिंदु था हिल्फ़र्डिंग का क्रेडिट मुद्रा का विश्लेषण, जोकि बैंकों और उनकी नई भूमिका पर उनके विश्लेषण की आधारशिला है। हिल्फ़र्डिंग के अनुसार, 'निष्क्रिय मुद्रा', जिसका किसी उत्पादक उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जाता है, क्रेडिट उसे न्यूनतम रखने का एक साधन है। हिल्फ़र्डिंग के अनुसार बैंक क्रेडिट पुरानी छोटे अंतराल वाली वाणिज्यिक क्रेडिट से भिन्न है। वाणिज्यिक क्रेडिट व्यापारियों और बैंकों के द्वारा आरंभिक अवस्था में दिया जाता था। मुद्रा की भूमिका को कम करने में बैंक क्रेडिट ज्यादा प्रभावशाली हैं। वाणिज्यिक कार्यों के लिए व्यवसाय-संघों (firms) को दिए जाने वाले अल्पकालीन वाणिज्यिक क्रेडिट (संचरण में क्रेडिट) की तुलना में बैंक क्रेडिट की प्रकृति दीर्घकालीन पूँजी क्रेडिट (निवेश क्रेडिट) की होती है। इस तरह के बैंक क्रेडिट के उभार के साथ, बैंक अब केवल कर्जदार की ऋण चुकाने की क्षमता में ही नहीं, बल्कि कर्जदार फ़र्म के साथ दीर्घकालीन संभावनाओं में भी दिलचस्पी रखने लगे थे। मुनाफ़े और ब्याज के बीच अधिशेष मूल्य का पुनर्विभाजन हो जाता है, जिसमें ब्याज का सापेक्षिक भार बढ़ जाता है, जोकि अर्थव्यवस्था में बैंकों की बढ़ती ताकत की अभिव्यक्ति होती है।

हिल्फ़र्डिंग तर्क करते हैं कि बैंक और क्रेडिट की यह बदली हुई भूमिका पूँजी के सांद्रण और केंद्रीकरण में हुई अप्रत्याशित वृद्धि का परिणाम है जोकि मार्क्स के देहांत से ही लगातार जारी थी, मगर 1890 के दशक के मध्य से काफ़ी तेजी से बढ़ी थी। पूँजी के सांद्रण और केंद्रीकरण के कारण औद्योगिक इज़ारेदारी का उदय हुआ। इसने मुख्यतः जॉइंट स्टॉक कंपनियों का रूप अख्तियार किया, जिसके बारे में मार्क्स ने भी चर्चा की थी। जॉइंट स्टॉक कंपनियों का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू पूँजी के स्वामित्व और प्रबंधन का विच्छेद था। औद्योगिक पूँजीपति औद्योगिक उद्यमी के कार्यभार से मुक्त हो जाता है। इस परिघटना के कुछ महत्त्वपूर्ण परिणाम होते हैं। उनमें से एक है 'प्रमोटर के मुनाफ़े का उदय', जोकि किसी नई बनी जॉइंट स्टॉक कंपनी में ऐसे दाम पर शेयर बेचने से उत्पन्न होता है जो कंपनी के पूँजी स्टॉक के वास्तविक मूल्य से काफ़ी ज्यादा हो; ऐसा संभव है जब निवेश पर ब्याज की वर्तमान दर की तुलना में पूँजी पर रिटर्न (yield on capital) अधिक हो। जैसा कि मार्क्स ने भी जाहिर किया था, ब्याज की दर के मुनाफ़े की औसत दर से कम होने का स्पष्ट रुझान होता है। स्टॉक बाज़ार में किसी कंपनी के पूँजीकृत मूल्य और कंपनी के पूँजी स्टॉक के वास्तविक मूल्य में अंतर प्रमोटर के मुनाफ़े के बराबर होता है। यह न केवल और ज्यादा जॉइंट स्टॉक कंपनियों के गठन को प्रोत्साहित करता है बल्कि विशाल संपत्ति का स्रोत भी है जिसका प्रयोग और ज्यादा निवेश करने के लिए किया जाता है। दोनों ही तरीकों से, ये पूँजी के केंद्रीकरण के रुझान, विशाल कॉरपोरेशनों और परिणामस्वरुप संपूर्ण उद्योगों और अर्थव्यवस्था की शाखाओं को नियंत्रित करने वाले कार्टेलों, ट्रस्टों और सिंडिकेटों की वृद्धि को और ज्यादा तेज कर देता है। किसी कंपनी में शेयरों के खरीदारों को लाभांश

मिलता है जो ब्याज दर के समीप होता है। परिणामस्वरुप बड़े शेयरधारकों की जेबें प्रमोटर के मुनाफ़े के बड़े हिस्से से लगातार मोटी होती जाती हैं। सामान्यतः जोखिम प्रीमियम के जोड़ के कारण, लाभांश ब्याज की दर के ऊपर होता है जोकि जॉइंट स्टॉक कंपनी के बोर्ड के द्वारा निर्धारित किया जाता है। हिल्फ़र्डिंग के द्वारा पेश की गई प्रमोटर के लाभ और लाभांश की श्रेणियां निश्चित रूप से इज़ारेवादी के चरण में पूँजीवाद की समझ को समृद्ध करती हैं और आज के पूँजीवाद के विश्लेषण के लिए भी प्रासंगिक हैं। हिल्फ़र्डिंग का जॉइंट स्टॉक कंपनियों के उदय का विश्लेषण, जिसके फलस्वरूप पूँजी के स्वामित्व और प्रबंधन का विभाजन हो जाता है, साथ ही उनका प्रमोटर के मुनाफ़े और प्रमोटर के वित्तीय पूँजी पर नियंत्रण का विश्लेषण मूलतः मार्क्स के द्वारा *पूँजी* के खंड 3 में अवास्तविक पूँजी के विश्लेषण का ही विस्तार है जिसके अनुसार अवास्तविक पूँजी उत्पादक पूँजी की नकल है। हिल्फ़र्डिंग दिखाते हैं कि महज़ अवास्तविक पूँजी के स्वामित्व का स्थानांतरण करके ही यानि स्टॉक, बांड और सेक्योरिटी आदि के संचरण पर और उनके जारी होने पर नियंत्रण रखकर ही प्रमोटर का मुनाफ़ा विनियोजित हो सकता है।

हिल्फ़र्डिंग तर्क देते हैं कि पूँजी के बढ़ते सांद्रण और केंद्रीकरण से उत्पादन का स्तर भी भारी अनुपात में बढ़ता है। इस चरण में बैंकों की भूमिका बदलती है और उनका महत्त्व केंद्रीय हो जाता है। इसका कारण है कि उत्पादन के बढ़ते स्तर के साथ ही किसी भी नए निवेश या अचल पूँजी के प्रतिस्थापन के लिए दीर्घकालीन निवेश क्रेडिट की आवश्यकता होती है। फ़र्म व्यक्तिगत संपत्ति के किसी भी बांड से अनिवार्यतः मुक्त होनी चाहिए। बड़े व्यवसाय में ऐसे निवेश की ज़रूरत होती है जो किसी भी एकल पूँजीपति के संसाधनों से काफ़ी ज्यादा हो। बैंकों के द्वारा पूँजी एकत्र की जाती है जो उद्यम के शेयर के बदले में क्रेडिट देते हैं। बैंक क्रेडिट देते हैं और लोन के साथ जुड़े जोखिम कम से कम करने के लिए कार्टेलीकरण का और प्रतिस्पर्धा पर बंधन का समर्थन करते हैं। उसी समय, बैंकों के बीच प्रतिस्पर्धा से बैंकिंग क्षेत्र में भी इज़ारेदारी की प्रक्रिया चलती रहती है। फलस्वरूप, पूरे बैंकिंग क्षेत्र में कुछ ही बैंकों का दबदबा हो जाता है। इस प्रक्रिया में बड़े वित्त के तले औद्योगिक, बैंकिंग और वाणिज्यिक पूँजी का एकीकरण हो जाता है। इस एकीकरण में, उद्योग और बैंकों के मालिक संघ के करीबी व्यक्तिगत नेटवर्क (close personal network of association) में एकीकृत हो जाते हैं। हिल्फ़र्डिंग के अनुसार एकीकरण का आधार है बड़े इज़ारेदारी गुटों के द्वारा एकल पूँजी के बीच मुक्त प्रतिस्पर्धा का खात्मा। यद्यपि हिल्फ़र्डिंग की पूरी प्रक्रिया में बैंकों की भूमिका केंद्रीय है, वित्तीय पूँजी अब न ही उद्योग के काम आने वाली पुरानी बैंक की पूँजी रह जाती है और न ही बैंक पूँजी का औद्योगिक पूँजी पर प्रभुत्व रह जाता है, बल्कि एक नई प्रकार की पूँजी पैदा होती है जो इन दोनों के मिश्रण से पैदा होती है।

पूँजी के निर्यात की परिघटना औद्योगिक इज़ारेदारियों और वित्तीय पूँजी के उदय के साथ जुडी है। मुक्त-व्यापार पूँजीवाद की अभिलाक्षणिता मालो का निर्यात थी, जिस दौरान ब्रिटेन दुनिया की अग्रणी औद्योगिक ताकत बनकर उभरा। जर्मनी और अमेरिका के बढ़ते प्रतिस्पर्धी दबाव और बढ़ते सुरक्षात्मक टैरिफ से, पूँजी का निर्यात, मालो के निर्यात की जगह मुख्य रुझान बन गया। पूँजी के निम्न आवयविक संघटन या उच्च लाभप्रदता के कारण विदेशी व्यापारों में ऊँची कीमतों ने भी पूँजी के निर्यात के लिए प्रेरित किया। संरक्षात्मक टैरिफ को दरकिनार करने के लिए पूँजी निर्यात की गई थी और इसे विदेशों में औद्योगिक संयंत्रों की स्थापना के लिए इस्तेमाल किया गया था। ये उद्योग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मूल कंपनी के स्वामित्व में बने रहे और उनके मुनाफे को मूल देश में वापस भेजा गया। दूसरी ओर, बैंक विदेशों में शाखाएँ स्थापित करते हैं और ये शाखाएँ उद्योगों या बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं के निर्माण के लिए ऋण की शर्तों पर बातचीत करते हैं; ऋण की शर्तों में यह धारा भी शामिल होती है कि निर्माण के अनुबंध को मूल देश में बैंक से जुड़ी कंपनियों को दिया जाएगा। बैंकों और उद्योगों के बीच इस अंतरंग संबंध ने पूँजी के निर्यात में तेजी से वृद्धि की। पूँजी के निर्यात की वृद्धि का विश्लेषण करते हुए, हिल्फ़र्डिंग भी सुरक्षात्मक टैरिफ के बदलते रूप की तरफ़ इंगित करते हैं। इससे पहले सुरक्षात्मक टैरिफ का उपयोग घरेलू उद्योग की सुविधा, इसे अपने पैरों पर खड़ा करने और इसे विदेशी प्रतियोगिता से बचाने में मदद करने के लिए किया गया था। हालाँकि, अब सुरक्षात्मक टैरिफ का इस्तेमाल घरेलू उद्योग को मूल देश में इज़ारेदारी का लाभ लेने में सक्षम बनाने और विदेशी बाजारों में अपने उत्पादों को डंप करने के लिए किया गया और इसके लिए मूल देश में उपभोक्ताओं से बेजा शुल्क लिया गया। यह एक ऐसा साधन था जिसके माध्यम से इज़ारेदारीकरण को बढ़ावा दिया गया था।

हिल्फ़र्डिंग का तर्क है कि यह पूँजी के निर्यात का बढ़ता रुझान है जो साम्राज्यवाद को जन्म देता है। एक तरफ पूँजी का निर्यात बाजारों का विस्तार करता है और लाभदायक निवेश के नए अवसर प्रदान करता है, उन्नत देशों में मजदूरी में वृद्धि करता है, लेकिन साथ ही साथ ये देश

औपनिवेशिक या निर्भर क्षेत्रों में भाड़े के श्रम की कमी का सामना करते हैं। इस प्रकार, पूँजी-निर्यात करने वाले उन्नत पूँजीवादी देश प्राक्-पूँजीवादी संबंधों को ख़त्म करने, बेगारी कराने, श्रम-अधिशेष वाले क्षेत्रों से आव्रजन के लिए बाध्य होते हैं। इन सब से पिछड़े देशों पर साम्राज्यवादी प्रभुत्व हो जाता है। हिल्फ़र्डिंग के अनुसार साम्राज्यवादी नीति के तीन उद्देश्य हैं: सबसे बड़े संभावित आर्थिक क्षेत्र की स्थापना, प्रतिद्वंद्वियों के लिए सुरक्षात्मक टैरिफ लगाकर इस क्षेत्र की नाकाबंदी और राष्ट्रीय इज़ारेदारी गुटों के द्वारा इसे शोषण के क्षेत्र के रूप में आरक्षित कर लेना। इससे अनिवार्य रूप से उन्नत पूँजीवादी राज्यों के बीच साम्राज्यवादी प्रतिद्वंद्विता बढ़ती है। मुक्त व्यापार युग में पूँजीवादी राज्यों ने उपनिवेशों के प्रति अपेक्षाकृत उदासीन रुख दिखाया, लेकिन वित्त पूँजी के युग में वे पूँजी के निर्यात के कारण उपनिवेशवाद की एक बहुत सक्रिय नीति का पालन करते हैं। लेकिन हिल्फ़र्डिंग के लिए, लेनिन और बुखारिन के विपरीत, साम्राज्यवादी प्रतिद्वंद्विता अनिवार्य रूप से युद्ध को अंजाम नहीं देती है। उनका मानना था कि मजदूर वर्ग के विरोध से सैन्यवाद और युद्ध की तैयारी पर रोक लग सकती है और ऐसा करने से पूँजीवाद के पतन की रफ्तार बढ़ सकती है।

हिल्फ़र्डिंग के अनुसार, इज़ारेदारी का उदय ग़ैर-कार्टेलीकृत क्षेत्र से लाभ स्थानांतरित करके मूल्य के नियम के प्रचालन को क्षीण करता है। फलस्वरूप, एक दोहरी अर्थव्यवस्था अस्तित्व में आती है जिसमें मुनाफ़े की दर छोटे उद्योगों की अपेक्षा बड़ी इज़ारेदारियों के लिए व्यवस्थागत रूप से ज्यादा होती है। दूसरे शब्दों में, मुनाफ़े की दर का औसतीकरण (averaging) बाधित हो जाता है। हिल्फ़र्डिंग के अनुसार दोनों क्षेत्रों में निवेश कम हो जाता है। कार्टेलीकृत क्षेत्र में यह इसलिये कम होता है क्योंकि कार्टेल का मुख्य उद्देश्य उत्पादन को सीमित करना है, जबकि ग़ैर-कार्टेलीकृत क्षेत्र में यह घटता है क्योंकि लाभ की दर कम होती है जो निवेश को हतोत्साहित करता है। हिल्फ़र्डिंग का कहना है कि इससे पूँजी का अतिसंचय हो जाता है और उससे पूँजी का निर्यात बढ़ जाता है। हिल्फ़र्डिंग के इन विचारों की कई मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्रियों ने उचित ही आलोचना की है कि मूल्य का श्रम का सिद्धांत क्षीण हो जाता है और इज़ारेदारी कीमतें मनोगत रूप से निर्धारित की जाती हैं।

हिल्फ़र्डिंग की एक अन्य त्रुटि यह मानना था कि कार्टेलीकरण की कोई वस्तुपरक सीमा नहीं हैं। उनके लिए संपूर्ण उत्पादन का एकमात्र कार्टेल के द्वारा नियंत्रण कल्पनीय है। इससे कीमतें महज़ लेखांकन यंत्र में बदल जाती हैं, जिनका प्रबंधन और निर्धारण सचेतन और मनोगत रूप से कार्टेल के द्वारा किया जाता है। इससे एक 'सचेतन रूप से विनियमित समाज का गठन होगा, लेकिन एक शत्रुतापूर्ण तरीके से।' शत्रुतापूर्ण क्योंकि कुछ विशाल निगमों ने सारी पूँजी और उत्पादन को नियंत्रित किया होगा जबकि जनता के पास कुछ नहीं होगा। इससे वर्ग संघर्ष तीखे हो जाएँगे क्योंकि संपत्ति संबंधों की समस्या तीखी हो जाएगी। हिल्फ़र्डिंग के अनुसार इससे हिंसक संघर्ष भी हो सकते हैं। लेकिन यह अकेला कार्टेल पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली में अंतरनिहित उत्पादन की अराजकता को ख़त्म कर पाने में सक्षम होगा। संकट पूरी तरह से नहीं दूर होगा। लेकिन इज़ारेदारियाँ संकट के बोझ को ग़ैर-कार्टेलीकृत क्षेत्रों में स्थानांतरित करने में सक्षम होंगी।

हिल्फ़र्डिंग ने यह भी गलत समझा कि वित्तीय पूँजी के दौर में इज़ारेदारी उत्पादन की अराजकता को दूर कर पूँजीवाद को संकट-मुक्त कर सकती है। उन्होंने तर्क दिया कि पूँजीवाद के तहत वित्तीय पूँजी ने अधिकतम सीमा तक उत्पादन का सामाजीकरण कर दिया है। जर्मनी में, सारा उत्पादन वास्तव में 6 बैंकों द्वारा नियंत्रित होता है और जो भी इन 6 बैंकों पर नियंत्रण कर लेता है, उसका पूरी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण हो जाता है। इस प्रकार पूँजीवाद पर काबू पाने के लिए मैदान तैयार हो जाता है। ये हिल्फ़र्डिंग द्वारा 'संगठित पूँजीवाद' के सिद्धांत के बीज थे। 1920 के दशक तक, वह स्पष्ट रूप से 'संगठित पूँजीवाद' के बारे में बात कर रहे थे। इज़ारेदार वित्तीय पूँजी के प्रभुत्व के दौर में कुछ हद तक नियोजन हुआ है। राज्य के हस्तक्षेप की वजह से भी इसमें कुछ वृद्धि हुई है। नतीजतन, प्रथम विश्व युद्ध के बाद पूँजीवादी राज्यों के बीच के संबंधों की अभिलाक्षणिकता को हिल्फ़र्डिंग ने 'यथार्थवादी शांतिवाद' कहा था। वे अभी भी साम्राज्यवाद को एक आवश्यक चरण मानते थे लेकिन युद्ध के बाद वे ऐसा मानते हुए प्रतीत होते थे कि इस चरण में साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा कम महत्त्वपूर्ण पहलू हो सकती है और साम्राज्यवाद अपने औपनिवेशिक रूप में एक कम स्थाई परिघटना हो सकता है। उन्होंने 1927 में दलील दी, "हम ताकतों के अनियमित या अप्रतिबंधित रूप से विनियमित अर्थव्यवस्था से संगठित अर्थव्यवस्था ...की तरफ़ बढ़ रहे हैं। इस संगठित अर्थव्यवस्था के लक्षणों में एक था नियोजन की वैज्ञानिक पद्धतियों के द्वारा प्रतिस्पर्धा का प्रतिस्थापन। समझा जा सकता है कि इस तरह का विश्लेषण अनिवार्य रूप से सुधारवादी निष्कर्ष पर ले जाएगा। यदि कोई यह निष्कर्ष निकालता है कि वित्तीय पूँजी के दौर में उत्पादन की दुनिया का अंतरविरोध और

उत्पादन में अन्तर्निहित अराजकता समाप्त हो जाती है और यह कि वर्ग संघर्ष अब उत्पादन के वितरण मात्र का मुद्दा रह गया है, तो उस बिंदु से सुधारवादी राजनीतिक कार्यक्रम के लिए स्वतंत्र राजमार्ग की शुरुआत हो जाती है। वही हिल्फ़र्डिंग के साथ हुआ जिनका राजनीतिक निष्कर्ष संसदीय माध्यमों से समाजवाद ला रहा था। उन्होंने तर्क दिया कि उत्पादन के समाजीकरण और एक मजबूत, हस्तक्षेपवादी राज्य के उदय के साथ, अब बुर्जुआ राज्य को नष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है, बल्कि इस पर कब्जा कर लेने की जरूरत है और सामाजिक रूप से उत्पादन के नियोजन और नियंत्रण में इसकी भूमिका के विस्तार की ज़रूरत है। हिल्फ़र्डिंग का निम्नलिखित उद्धरण उनकी त्रुटियों को सबसे स्पष्ट रूप से उजागर करता है:

> "कार्टेलीकरण की कोई निरपेक्ष सीमा नहीं है। उसके विपरीत, कार्टेलीकरण के लगातार विस्तार का रुझान होता है। जैसा कि हमने देखा है, स्वतंत्र उद्योग लगातार उन उद्योगों पर निर्भर होते जाते हैं जी कार्टेलीकृत हो चुके हैं, और इस निर्भरता का अंत इस तरह होता है कि वो उद्योग अंततः कार्टेलीकृत उद्योगों के द्वारा हथिया लिए जाते हैं। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप एक सार्विक कार्टेल का उभार होता है। पूरा का पूरा पूँजीवादी उत्पादन एक निकाय के द्वारा सचेतन रूप से विनियमित किया जाता है जोकि इसके सभी क्षेत्रों में उत्पादन की सीमा निर्धारित करता है। फिर कीमतों का निर्धारण विशुद्ध रूप से नाममात्र का रह जाता है और इसका एकमात्र महत्व एक तरफ कार्टेल के थैलीशाहों में कुल उत्पाद का वितरण होता है, और दूसरी तरफ, समाज के अन्य सभी सदस्यों सहित जनता में। तब कीमत उस भौतिक (*sachliche*) संबंध का परिणाम नहीं रह जाती जिसमें मनुष्य ने प्रवेश किया है बल्कि मनुष्य द्वारा मनुष्य को वस्तुओं का आवंटन करने का एक अंकगणितीय तरीका मात्र रह जाती है। मुद्रा की कोई भूमिका नहीं रह जाती। ये पूरी तरह से गायब हो सकता है, क्योंकि अब सवाल वस्तुओं के आवंटन का रह जाता है, मूल्यों के आवंटन का नहीं। उत्पादन की अराजकता के साथ-साथ मालो का भौतिक स्वरूप गायब हो जाता है, मूल्य वाली वस्तुओं के रूप में उनका चरित्र गायब हो जाता है, और गायब हो जाती है -- मुद्रा। कार्टेल उत्पादों का वितरण करता है। उत्पादन के भौतिक तत्त्वों को पुनरुत्पादित कर दिया गया है और अब उनका प्रयोग नए उत्पादन के लिए किया जा रहा है। नए उत्पादों का एक हिस्सा मजदूर वर्ग और बुद्धिजीवियों के बीच वितरित किया जाता है, दूसरा भाग कार्टेल की इच्छानुसार किसी भी उद्देश्य के लिए कार्टेल के हिस्से में जाता है। यह सचेतन तौर पर शत्रुतापूर्ण ढंग से विनियमित समाज हो जाता है। *लेकिन यह शत्रुता वितरण की शत्रुता होती है।* वितरण को भी सचेतन तौर पर विनियमित किया जाता है और इसलिए एक आवश्यकता के रूप में मुद्रा भूतकाल की बस्तु बन जाती है। अपने संपूर्ण अर्थ में वित्त पूँजी उस मिट्टी से उखड़ जाती है जिस पर वह छिड़की गई थी और जहाँ उसका पोषण हुआ।
>
> "एक सार्विक कार्टेल बनाने का रुझान और एक केन्द्रीय बैंक बनाने का रुझान, दोनों मिल जाते हैं, और ये उनकी मिलीभगत से संभव होता है कि वित्तीय पूँजी के संचय की ज़बरदस्त शक्ति उभरती है।" (*ibid,* p. 234) (अनुवाद हमारा)

हिल्फ़र्डिंग का संकटों का सिद्धांत भी उनके कुल सैद्धांतिकीकरण का एक दिक़्क़ततलब क्षेत्र है। उत्पादन की अराजकता और संकटों के स्रोत के रूप में वह पूँजीवाद में विभागों के बीच असमानुपातिकता पर ही पूरी तरह से ध्यान केंद्रित करते हैं। हालाँकि, मार्क्स के अनुसार यह असमानुपातिकता मुनाफ़े की गति की ही एक अभिव्यक्ति है। इसलिए यहाँ भी बुनियादी नियामक लाभप्रदता है। हालाँकि, चूँकि हिल्फ़र्डिंग असमानुपातिकता पर ही ध्यान देते हैं, इसीलिए उनके निष्कर्ष जाहिर हैं। सार्विक कार्टेल के एक बार बन जाने के बाद, पूँजीवाद के लिए बिना संकट के विकसित हो पाना मुमकिन हो जाता है, "केवल तभी जब उत्पादन को उचित रूप से विनियमित किया जाए।" यद्यपि, हिल्फ़र्डिंग का कहना है कि एक सार्विक कार्टेल का सामाजिक और राजनीतिक रूप से उभरना संभव नहीं लगता है, परन्तु यह सैद्धांतिक रूप से और आर्थिक रूप से बोधगम्य है। इसी गलती के कारण, हिल्फ़र्डिंग वित्त इज़ारेदारी के चरण में पूँजीवाद के परजीवी और मरणासन्न चरित्र को नहीं देख सके। स्पष्ट तौर पर, हिल्फ़र्डिंग पूँजीवाद के अंतर्गत *असमान विकास के नियम* को भूल जाते हैं जिसके कारण किसी सार्विक कार्टेल का बनना मुमकिन नहीं है। लेनिन के लिए, यह सैद्धांतिक रूप से भी संभव नहीं था, और ऐसा ठीक इसलिए क्योंकि पूँजीवादी संघों के बीच सभी समझौते अस्थायी होते हैं और संघ के पक्षों की सापेक्षिक शक्ति में परिवर्तन पर निर्भर करते हैं; असमान विकास के कानून से पता चलता है कि चूँकि शक्ति का यह संतुलन लगातार बदलता रहता है और विखंडन और संलयन की निरंतर प्रक्रिया की ओर जाता है, इसलिए ऐसा सार्विक कार्टेल सैद्धांतिक रूप से असंभव है।

इन त्रुटियों और सीमाओं के बावजूद, रुडोल्फ़ हिल्फ़र्डिंग ने निश्चित रूप से साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के इज़ारेदारी के चरण के आगे के अध्ययन के लिए एक नींव रखी। इन्हीं बुनियादों पर, विशेषकर लेनिन और बुखारिन ने साम्राज्यवाद के मार्क्सवादी सिद्धांत का विकास किया। हालाँकि, लेनिन और बुखारिन से पहले रोज़ा लक्ज़मबर्ग की रचना प्रकाशित हुई।

रोज़ा लक्ज़मबर्ग और *Accumulation of Capital*

साम्राज्यवाद के मसले पर लिखी गई अगली बड़ी रचना रोज़ा लक्ज़मबर्ग की सर्वप्रमुख रचना *The Accumulation of Capital* थी। दरअसल, यह रचना साम्राज्यवाद के मसले पर केंद्रित नहीं थी। हालांकि, पूँजीवादी विकास के अपने सिद्धांत के प्रतिपादन के दौरान, लक्ज़मबर्ग ने साम्राज्यवाद की भी अपनी समझ को व्यक्त किया। इस बात का ज़िक्र पहले ही करना होगा कि उनकी रचना जर्मन सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी के भीतर कार्ल काउत्स्की और रुडोल्फ़ हिल्फ़र्डिंग के प्रतिनिधित्व में क्रमशः दक्षिणपंथी और मध्यमार्गी-दक्षिणपंथी अवसरवाद के ख़िलाफ़ थी। हालाँकि, वो उन पर विरले ही आमने-सामने का वार करती हैं। बल्कि वो तुगन-बारानोव्स्की और खुद मार्क्स पर ही ज्यादा हमले करती हैं। तुगन-बारानोव्स्की और बाद में हिल्फ़र्डिंग ने *पूँजी* के दूसरे खंड में मार्क्स के पुनरुत्पादन स्कीमा की व्याख्या प्रस्तुत की थी। इस सिद्धांत के अनुसार, पूँजीवाद के भीतर विभागों के बीच की असमानुपातिकता को ख़त्म किया जा सकता है और व्यवस्था अनिश्चित काल तक खुद का पुनरुत्पादन कर सकती है। रोज़ा लक्ज़मबर्ग ने इन गलत व्याख्याओं की आलोचना करने के बजाय, मार्क्स के पुनरुत्पादन की स्कीमा पर हमला किया, जबकि इस स्कीमा का उद्देश्य केवल उन *परिस्थितियों* को दर्शाना था जिनके तहत पूँजीवादी व्यवस्था खुद का पुनरुत्पादन कर *सकती* है। मार्क्स स्पष्ट थे कि पूँजीवाद के लिए खुद का उन परिस्थितियों के अंतर्गत पुनरुत्पादन करना *संभव* था जिन्हें रोज़ा लक्ज़मबर्ग ने *शुद्ध पूँजीवाद* कहा था। पर इसका ये मतलब नहीं है कि ये खुद का अनिश्चित काल तक पुनरुत्पादन *करेगा*। महज़ यह दर्शाने के लिए कब और क्यों पूँजीवाद खुद का पुनरुत्पादन नहीं कर पाता है, मार्क्स उन परिस्थितियों को दर्शाते हैं जिनके अंतर्गत पूँजीवाद खुद का पुनरुत्पादन कर *सकता* है। मगर अपने अल्पउपभोगवादी विचारों के कारण लक्ज़मबर्ग इसे समझ नहीं पाईं। उल्लेखनीय है कि उनके अल्पउपभोगवादी विचार कार्ल काउत्स्की के सैद्धांतिक नेतृत्व में विकसित हुए थे, काउत्स्की ने 1884 और फिर 1901 में अल्पउपभोगवादी अवस्थिति अपनाई थी (हालाँकि 1901 में अल्पउपभोगवाद पर उनका फोकस गोलमोल ढंग से था यानि अतिउत्पादन की दीर्घकालिक समस्या पर विशेष ध्यान देने के रूप में)। हालाँकि रोज़ा इस तर्क को काउत्स्की से भिन्न तरीके से और संपूर्णता में विकसित करती हैं।

प्रतिक्रियावादी अल्पउपभोगवादी माल्थस से लेकर, सिस्मोंदी और हॉब्सन जैसे सुधारवादी अल्पउपभोगवादी, रोज़ा लक्ज़मबर्ग जैसे क्रांतिकारी "वाम" अल्पउपभोगवादी और स्वीज़ी, बरान, ऐंड्रू गुंदर फ्रैंक, इमैनुअल वॉल्टर्सटाइन और आर्गिरी इमैनुअल जैसे सिद्धान्तकर जिन्हें मैं व्यापक "विनिमय-संबंध स्कूल" से मानता हूँ, इन सभी प्रकार के अल्पउपभोगवादियों की मूल धारणा है: *पूँजीवाद में और सामान्य तौर पर उपभोग उत्पादन का विनियामक होता है।* जैसा कि हम जानते हैं, मार्क्स ने सिखाया कि पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन और निवेश का नियामक लाभप्रदता है और अर्थव्यवस्था में इसी की गति से ही नियमित रूप से और बार-बार असमानुपातिकता और अल्पउपभोगवाद की परिघटना दिखाई पड़ती है; दूसरे शब्दों में, असंगतता और अल्पउपभोगवाद पूँजीवाद के संकट के *आधारभूत बुनियादी कारण* नहीं हैं और वे लाभप्रदता के संकट के केवल *तात्कालिक कारण* या *लक्षण* हो सकते हैं।

अल्पउपभोगवाद का आधारभूत तर्क यह है कि उपभोग उत्पादन को विनियमित करता है लेकिन पूँजीवाद उपभोग की सामाजिक आवश्यकताओं की पहचान नहीं कर पाता है। यह केवल माँग की पहचान कर पता है और वह भी प्रभावी माँग की (जो मुद्रा/क्रय शक्ति से समर्थित होता है)। हालाँकि, अपनी प्रकृति से ही पूँजीवाद पर्याप्त प्रभावी माँग पैदा नहीं कर सकता। इसलिए, ये खुद का विस्तारित पैमाने पर पुनरुत्पादन नहीं कर सकता, और गतिरोध में फँस कर इसका पतन होता ही है क्योंकि पूँजीवादी उत्पादन, प्रकृति से विस्तारित पुनरुत्पादन है। 'माँग-अंतर (demand gap)' की अवधारणा लक्ज़मबर्ग के सिद्धांत सहित सभी अल्पउपभोगवादी सिद्धांतों के लिए केंद्रीय है। इस अवधारणा में, विभाग - 1 (उत्पादन का विभाग), विभाग - 2 (उपभोग के सामान) के साथ *अधीनस्थ स्थिति* में उर्ध्वाधर रूप से एकीकृत है, क्योंकि उत्पादन उपभोग के लिए ही किया जाता है। समाज का कुल उत्पाद (total product), शुद्ध उत्पाद (net product) और खर्च हो

चुके उत्पादन के साधनों को बदलने या उनका नवीनीकरण करने वाले उत्पादों के जोड़ के बराबर है। मजदूरों के उपभोग और पूँजीपतियों के उपभोग का समुच्चय ही शुद्ध उत्पाद है। आय की शब्दावली में, शुद्ध आय (net income) मजदूरी और मुनाफ़े का जोड़ होती है। मजदूर अपनी सारी आय (मजदूरी) उपभोग में खर्च कर देते हैं और शुद्ध उत्पाद के अपने हिस्से का उपभोग कर लेते हैं। हालाँकि, पूँजीपति विस्तारित पुनरुत्पादन की परिस्थितियों में अपने हिस्से का पूरा उपभोग नहीं करते हैं और उत्पादन का स्तर बढ़ाने के लिए उसके एक हिस्से का संचय कर लेते हैं। नतीजतन, एक माँग-अंतर पैदा हो जाता है क्योंकि शुद्ध पूँजीवाद की सीमाओं के भीतर कोई 'प्रभावी माँग' नहीं पा सकने के कारण शुद्ध उत्पाद के एक हिस्से का वास्तवीकरण नहीं हो पाता है। विस्तारित पुनरुत्पादन के साथ यह माँग-अंतर बढ़ता जाता है क्योंकि उत्पादकता बढ़ने के साथ ही आय में मजदूरी का सापेक्षिक हिस्सा घटता है और शुद्ध उत्पाद बढ़ता है। इस 'अधिशेष उत्पाद' के वास्तवीकरण के लिए, कोई ग़ैर-पूँजीपति ख़रीददार आवश्यक होता है; माल्थस के लिए यह ग़ैर-पूँजीपति ख़रीददार ज़मींदार, अभिजात्य वर्ग आदि जैसा परजीवी वर्ग था। हालाँकि, लक्ज़मबर्ग उचित तर्क देती हैं कि इन वर्गों का उपभोग/आय या तो मुनाफ़े से आता है या मजदूरी से आता है और यह असल में या तो पूँजीपतियों के या मजदूरों के उपभोग के एक हिस्से का प्रतिस्थापन कर देते हैं। रोज़ा ने कहा कि मजदूर 'अधिशेष' का उपभोग नहीं कर सकते क्योंकि उनका उपभोग आरंभिक पूँजी निवेश का ही परिणाम है। पूँजीपति एक दूसरे के अधिशेष का उपभोग नहीं कर सकते (रोज़ा के अनुसार न ही व्यक्तिगत उपभोक्ताओं के रूप में और न ही उत्पादक उपभोक्ताओं के रूप में) और इस रूप में वो एक वर्ग के रूप में और अमीर नहीं हो सकते हैं। वे कहती हैं कि ऐसा तर्क 'एक चक्करघिन्नी बनाता है जो खाली जगह में अपने ही चारों तरफ़ घूमता रहता है।' उनके लिए, यह बोधगम्य नहीं था क्योंकि इसका मतलब था 'उत्पादन के लिए ही उत्पादन।' (!) इसलिए, एकमात्र विकल्प बचता है गैर-पूँजीपति उत्पादकों का वर्ग जिनमें छोटे माल उत्पादक, किसान आदि आते हैं। इसलिए, रोज़ा लक्ज़मबर्ग के अनुसार पूँजीवाद की गैर-पूँजीपति परिधि (पहले देश के अंदर और फिर बाहर) के अस्तित्व के बिना वृद्धि नहीं हो सकती। इसलिए लक्ज़मबर्ग के अनुसार,

> "एक ऐसा समाज जिसमें केवल मजदूर और पूँजीपति हों, उसमें संचय के उद्देश्यों के लिए अधिशेष मूल्य का वास्तवीकरण एक असंभव कार्य होगा।" (Rosa Luxemburg, *The Accumulation of Capital,* Martino Publishing, Mansfield Centre, CT, 2015, p. 350)

और

> "एक पूँजीवादी समाज में उपभोग और उत्पादन की क्षमताओं में एक गहरा और आधारभूत अंतरविरोध होता है, ये एक ऐसा टकराव है जो पूँजी के संचय के फलस्वरूप होता है जो समय समय पर संकट के रूप में फूट पड़ता है और पूँजी को बाज़ार के निरंतर विस्तार के लिए प्रेरित करता है।" (*ibid,* p. 347) (अनुवाद हमारा)

इसलिए, पूँजी संचय की मूलभूत पूर्व शर्त दुनिया के प्राक्-पूँजीवादी कृषि क्षेत्रों के रूप में एक गैर-पूँजीवादी परिधि का अस्तित्व है, जहां अधिशेष उत्पाद का गैर-पूँजीवादी खरीदारों के माध्यम से वास्तवीकरण किया जा सकता है।

यह लक्ज़मबर्ग के पूँजी के संचय के सिद्धांत का निचोड़ है और यही साम्राज्यवाद के उनके सिद्धांत की आधारशिला भी है। इस सिद्धांत को गढ़ने की प्रक्रिया में रोज़ा लक्ज़मबर्ग मार्क्स के पुनरुत्पादन के स्कीमा की समालोचना करने का प्रयास करती हैं जो उनकी राय में तुगन-बारानोव्स्की, हिल्फ़र्डिंग जैसे लोगों के सामंजस्यवादी भ्रमों (harmonist illusions) का मूल कारण था। रोज़ा के अनुसार, मार्क्स अपने पुनरुत्पादन के स्कीमा में वास्तवीकरण की समस्या का पर्दाफ़ाश करने में असफल रहे जिससे ऐसा प्रतीत हुआ कि पूँजीवादी व्यवस्था उपभोग की सीमाओं के बिना खुद को पुन: उत्पन्न कर सकती है। मार्क्स के पुनरुत्पादन के स्कीमा को खंडित करने के लिए रोज़ा द्वारा प्रयोग में लाए गए संख्यात्मक मॉडलों के मीमांसा में हम नहीं जाएंगे। मुद्दा यह है कि रोज़ा द्वारा प्रयुक्त ये संख्यात्मक उदाहरण दोषपूर्ण हैं, वे पूँजी संचय के सामयिक और दिक् आयामों को भूल जाती हैं और मार्क्स के अनुसार पूँजी संचय की वास्तविक सीमाएँ उपभोग नहीं बल्कि खुद पूँजी है। हम थोड़ी देर में इस पर वापस आएँगे।

स्पष्ट है कि रोज़ा लक्ज़मबर्ग के अनुसार साम्राज्यवाद के उदय का कारण यह वास्तवीकरण का संकट है, जिसका पूँजीवाद सामना करता है, क्योंकि अधिशेष उत्पाद के वास्तवीकरण के लिए पूँजीवादी व्यवस्था को दुनिया के पिछड़े ग़ैर-पूँजीवादी कृषि क्षेत्रों तक अनिवार्य रूप से अपना विस्तार करना होगा। इसलिए, पूँजीवाद केवल 'ऐसी परिस्थितियों को आत्मसात करके आगे बढ़ सकता है जिनके अलावा और कोई इसके अस्तित्व को सुनिश्चित नहीं कर सकता।' इन पिछड़े क्षेत्रों में पूँजीवाद के विस्तार के साथ इन ग़ैर-पूँजीवादी परिधियों का पूँजीवादी रूपांतरण होता है। पहले, उन्नत पूँजीवादी क्षेत्र इन क्षेत्रों को जीत कर उनपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेते हैं। फिर ये उनकी प्राकृतिक अर्थव्यवस्था को नष्ट कर देते हैं और इन क्षेत्रों में माल उत्पादन की शुरुआत करते हैं। प्राकृतिक संसाधनों को जब्त कर लिया जाता है और उत्पादकों को प्राक्-पूँजीवादी उत्पीड़न से मुक्त कर दिया जाता है जिससे एक 'दोहरे रूप से मुक्त' सर्वहारा का निर्माण होता है। कृषि को उद्योग और व्यापार से अलग कर दिया जाता है। यह सब कुछ बलपूर्वक और जबरदस्ती किया जाता है क्योंकि पूँजी प्राक्-पूँजीवादी संरचनाओं के प्राकृतिक विखंडन का इंतज़ार नहीं कर सकती जिसमें सदियों लग सकते हैं। लक्ज़मबर्ग भारत पर विजय, अल्जीरिया में फ्रांसीसी उपनिवेशवाद और चीन में अफ़ीम युद्धों का विस्तार से विवरण देती हैं। कृषि और उद्योग में सामान्य माल उत्पादन का स्थान शीघ्र ही पूँजीवादी उत्पादन और पूँजीवादी संबंध ले लेते हैं। हालाँकि, अंततः इसी से संचय का संकट पैदा होता है और इसी से पूँजीवादी व्यवस्था और साम्राज्यवाद के संभावित विनाश की परिस्थितियाँ भी तैयार होती हैं क्योंकि इसी प्रक्रिया के तहत ही पूँजीवाद उन परिस्थितयों को भी नष्ट कर देता है जिनकी इसे अपने अस्तित्व के लिए बेहद ज़रूरत होती है। जैसे-जैसे ग़ैर-पूँजीवादी परिधि सिकुड़ती है, बचे हुए ग़ैर-पूँजीवादी क्षेत्रों में प्रभुत्व स्थापित करने के लिए उन्नत पूँजीवादी देशों के बीच प्रतिस्पर्धा और तीखी हो जाती है। वे दृढ़तापूर्वक कहती हैं,

> "पूँजीवादी संचय का साम्राज्यवादी चरण जिसमें सार्वभौमिक प्रतिस्पर्धा अंतरनिहित है, उसमें शामिल होता है औद्योगीकरण और *आतंरिक भूमि* की पूँजीवादी मुक्ति जहाँ पहले पूँजी ने अपने अधिशेष मूल्य का वास्तवीकरण किया था। इस चरण की अभिलाक्षणिकताएँ हैं: विदेश में उधार देना, रेल निर्माण, क्रांतियाँ और युद्ध।" (*ibid,* p. 419) (अनुवाद हमारा)

अंततः इन उपनिवेशीकृत क्षेत्रों में राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए लड़ाई संघर्ष शुरू हो जाता है। पूँजीवादी राजनीतिक मुक्ति की यह प्रक्रिया भी युद्धों और क्रांतियों से होकर गुजरती है। इसलिए, लक्ज़मबर्ग साम्राज्यवाद को इस तरह पारिभाषित करती हैं:

> "साम्राज्यवाद और कुछ नहीं, बस संचय का एक *विशिष्ट* तरीका है। (Rosa Luxemburg, *Anti-Critique,* p. 61-2) (अनुवाद हमारा)

> "साम्राज्यवाद गैर-पूँजीवादी दुनिया के परिवेश के उन अवशेषों के लिए प्रतिस्पर्धी संघर्ष में पूँजी के संचय की प्रक्रिया की राजनीतिक अभिव्यक्ति है, जिन अवशेषों के ख़िलाफ़ कोई attachment अभी तक नहीं लगाया गया है।" (Rosa Luxemburg, *The Accumulation of Capital,* Martino Publishing, Mansfield Centre, CT, 2015, p. 446) (अनुवाद हमारा)

> "हालाँकि, साम्राज्यवाद की *आतंरिक* आर्थिक प्रेरक ताकत को और ज्यादा सटीकता से पारिभाषित किया जा सकता है, इतना तो किसी भी कीमत पर स्पष्ट है और सामान्यतः ज्ञात है: पुराने पूँजीवादी देशों से पूँजीवाद के वर्चस्व के नए क्षेत्रों में विस्तार, और ऐसे क्षेत्रों के लिए उन पूँजीवादी देशों के बीच आर्थिक और राजनीतिक प्रतिस्पर्धात्मक संघर्ष में ही इसका सार सटीक रूप से शामिल है।" (Rosa Luxemburg, *Anti-Critique,* p. 62) (अनुवाद हमारा)

पूँजीवादी व्यवस्था के संभावित अंत के बारे में रोज़ा लिखती हैं:

> "पूँजीवाद *दोहरे रूप में* अपने खुद के विनाश की तैयारी कर रहा है: एक तरफ़ ये उस पल की तरफ़ बढ़ रहा है, जब उत्पादन के सभी ग़ैर-पूँजीवादी स्वरूपों की कीमत पर इसके विस्तार के कारण, पूरी मानवता में केवल पूँजीपति और दिहाड़ी मजदूर होंगे, और जब परिणामस्वरुप और ज्यादा विस्तार और संचय असंभव हो जाएगा। साथ ही ये इस हद तक उन्नत हो जाता है कि ये रुझान तेज हो जाता है, वर्ग दुश्मनाना, अंतरराष्ट्रीय और राजनीतिक अराजकता इस हद तक बढ़ जाती है कि आर्थिक विकास की तार्किक

> परिणति के बहुत पहले ही -- पूरी दुनिया में पूँजीवादी उत्पादन का निरपेक्ष अविभाजित प्रभुत्व -- हो चुका होगा और पूँजीपतियों के प्रभुत्व के ख़िलाफ़ अंतरराष्ट्रीय सर्वहारा का विद्रोह हो चुका होगा।" (Rosa Luxemburg, *Anti-Critique,* Chapter-1) (अनुवाद हमारा)

जैसा कि हम देख सकते हैं, यद्यपि रोज़ा लक्ज़मबर्ग का अल्पउपभोगवादी तर्क काउत्स्की से मेल खाता है और काउत्स्की के साम्राज्यवाद के अस्तित्व की पूर्वशर्त के रूप में कृषक परिधि और औद्योगिक अंतर्भाग के बीच विश्व के विभाजन का तर्क भी रोज़ा से मेल खाता है, मगर उसी समय अति-साम्राज्यवाद (super-imperialism) और समाजवाद में शांतिपूर्ण संक्रमण (यह अवस्थिति काउत्स्की ने 1910-11 के बाद ही अपनानी शुरू की थी) में काउत्स्की के विश्वास पर वो हमला भी बोलती हैं।

अब हम रोज़ा लक्ज़मबर्ग के राजनीतिक अर्थशास्त्र और राजनीतिक निष्कर्षों की भी आलोचना की शुरुआत कर सकते हैं। जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया था, यह तर्क देते समय कि ग़ैर-पूँजीवादी परिधि के बिना विस्तारित पुनरुत्पादन और संचय संभव नहीं है, रोज़ा लक्ज़मबर्ग ने पूँजीवादी पुनरुत्पादन प्रक्रिया के *सामयिक* और *दिक्* पहलुओं पर गौर नहीं किया। पूँजी का संचय वास्तविक समय में होता है और परिपथ के विभिन्न क्षण या चरण *केवल आंशिक रूप से समकालिक* प्रक्रिया और मुख्यतः *क्रमिक* प्रक्रिया के रूप में होते हैं। साधारण शब्दों में, पूँजीपति और मजदूर वर्तमान उत्पादन चक्र के उत्पाद से उपभोग के सामान (जिसमें पूँजीपतियों के लिए विलसिता के सामान भी शामिल हैं) और उत्पादन के साधन (पूँजीपति) नहीं खरीदते बल्कि पिछले उत्पादन चक्र से खरीदते हैं। अगर हम विस्तारित पुनरुत्पादन की परिस्थितियों को मान लेते हैं, तो वर्तमान चक्र में पूँजीपति उत्पादन के ज्यादा साधन खरीदेंगे और ज्यादा मजदूरों को नौकरी पर रखेंगे। इस तरह से बढ़े हुए उपभोग के लिए प्रभावी माँग मौजूद होगी और यह पूर्ववर्ती उत्पादन चक्र के अधिशेष मूल्य का वास्तवीकरण कर *सकती है*। इसलिए, विस्तारित पुनरुत्पादन पिछले चक्र के पूँजीवादी उत्पादन के अधिशेष उत्पाद को अवशोषित कर *सकता है*। मार्क्स ने ऐसा तर्क नहीं दिया था कि यह विस्तारित पुनरुत्पादन अधिशेष उत्पाद को अवशोषित *कर लेगा* बल्कि केवल उन परिस्थितियों की बात की थी जिनके अंतर्गत ऐसा संभव है। दूसरे, मार्क्स ने कभी नहीं कहा कि ऐसा जब भी होता है, यह सुचारू रूप से या निर्बाध रूप से हो जाएगा।

दूसरा पहलू जिसे लक्ज़मबर्ग भूल जाती हैं वो है विस्तारित पुनरुत्पादन का *दिक्* आयाम। वो मान लेती हैं कि पूँजीपति एक-दूसरे का अधिशेष नहीं खरीद सकते और इस तरह से और ज्यादा अमीर नहीं हो सकते क्योंकि इसका मतलब होगा 'उत्पादन के लिए ही उत्पादन।' पर वो भूल गई थीं कि यही तो पूँजीवादी उत्पादन है! वो एकल पूँजी के स्तर पर सवाल उठाती हैं जिसका जवाब और जिसकी व्याख्या केवल 'कई पूँजी (many capitals)' के स्तर पर ही संभव है। वो कुल सकल पूँजी (total aggregate capital) को एक एकल पूँजीपति (individual capitalist) के रूप में देख रही हैं, जबकि कुल सकल पूँजी (all individual capitals) एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करती हुई सभी एकल पूँजी का कुल योग होती है। वास्तविकता में, पूँजीपति एक दूसरे का अधिशेष खरीद कर भी और ज्यादा अमीर बन *सकते हैं*। पूँजीपति एक दूसरे के ग्राहक हो सकते हैं, होते हैं और उन्हें अनिवार्यतः होना ही पड़ता है और अधिशेष उत्पाद की प्रभावी माँग पूँजीपति वर्ग से पैदा हो *सकती है* और *होती है*, क्योंकि सामाजिक उत्पाद के उस हिस्से की माँग जिसका संचय होने जा रहा है, वो चर और अचर पूँजी (variable and constant capital) के इस्तेमाल को बढ़ाने के पूँजीपतियों के इरादे पर निर्भर करता है। लेकिन रोज़ा के लिए इस तर्क पद्धति का मतलब है कि "मानव उपभोग लगातार महत्त्वहीन होता जाता है, और उत्पादन ज्यादा से ज्यादा खुद के लिए ही होने लगता है।" रोज़ा के सिद्धांत की विडंबना यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था में वास्तविकता कुछ ऐसी ही है! पूँजीवादी व्यवस्था का लक्ष्य मानव उपभोग का विस्तार करना नहीं है। उपभोग के बजाय, लाभप्रदता पूँजीपति की प्रेरक शक्ति होती है। अगर उत्पादन के साधन, जो उत्पादन के साधनों का उत्पादन करते हैं (मशीन बनाने वाली मशीन), का लगातार उत्पादन बढ़ाते जाना लाभप्रद दिखाई पड़ता है, तो कोई कारण नहीं है कि पूँजीपति ऐसा प्रयास नहीं करेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि लक्ज़मबर्ग एक एकल पूँजीपति की आवश्यकताओं (माँग के बाह्य स्रोत) और संपूर्ण पूँजीवादी व्यवस्था की आवश्यकताओं में अंतर नहीं करती हैं, जबकि संपूर्ण पूँजीवादी व्यवस्था 'कई पूँजी' से मिलकर बनती है (ऐसे एकल पूँजी की संख्या कम-ज्यादा हो सकती है, मगर उससे समस्या का मूल नहीं बदल जाता)।

इन मूलभूत त्रुटियों के कारण, प्राक्-पूँजीवादी क्षेत्रों में निर्यात के प्रभाव का उनका विश्लेषण दोषपूर्ण और असंगत है। अगर इन निर्यातों को उतने ही आयात से संतुलित (offset) किया जाता है, तो उससे मांग के स्तर पर कोई सीधा असर नहीं पड़ेगा। मांग में वृद्धि केवल तभी हो सकती है जब कोई निर्यात *अधिशेष* है, जो तभी संभव है यदि केवल ग़ैर-पूँजीवादी परिधि के लिए *पूँजी का निर्यात* होता है। फिर विनिमय औपचारिक रूप से बराबर होगा और फिर भी उन्नत पूँजीवादी देश, पिछड़े क्षेत्रों में अधिशेष उत्पादन करके और मुनाफे को मूल देश में वापस भेजकर खुद को समृद्ध कर पाएँगे। लेकिन लक्ज़मबर्ग के अनुसार यहाँ एक समस्या आ जाती है। वो मानती हैं कि अपर्याप्त प्रभावी माँग विकसित पूँजीवाद के पूरे इतिहास की समस्या रही है, लेकिन पूँजी का निर्यात केवल इसके अंतिम चरण यानि साम्राज्यवादी चरण में शुरू हुआ। और फिर भी हिल्फ़र्डिंग, बुखारिन और लेनिन की तुलना में रोज़ा के सिद्धांत में, पूँजी के निर्यात की बहुत छोटी भूमिका है। हिल्फ़र्डिंग भी पूँजी के निर्यात के उदय की पर्याप्त व्याख्या नहीं कर पाए थे, लेकिन लक्ज़मबर्ग के लेखन में पूँजी के निर्यात के बढ़ते हुए रुझान की वस्तुतः कोई व्याख्या नहीं है। इसलिए रोज़ा लक्ज़मबर्ग की रचना में, सामान्यतः निवेश के विनियामक और विशेषतः पूँजी के निर्यात का कोई सिद्धांत नहीं है। यह स्वाभाविक है क्योंकि उनके अल्पउपभोगवादी तर्क के कारण, वो यह नहीं समझ पाती हैं कि ये लाभप्रदता (profitability) का संकट ही है जोकि पूँजी निर्यात के बढ़ते रुझान के पीछे का वास्तविक आधारभूत कारण है। यह पूँजी निर्यात इज़ारेदारी की अवस्था में काफ़ी बढ़ जाता है और प्राक्-साम्राज्यवादी चरण (pre-imperialist phase) के उपनिवेशवाद की तुलना में यह एक कहीं ज्यादा सक्रिय और पूँजी निर्यात पर आधारित एक भिन्न प्रकार की औपनिवेशिक नीति के रूप में जाहिर होता है। जाहिर है, रोज़ा पूँजीवाद के इज़ारेदारी चरण और पूँजीवाद के मुक्त-प्रतिस्पर्धा और मुक्त व्यापार चरणों के बीच भेद करने में विफल रहती हैं। वो वित्तीय पूँजी, पूँजी निर्यात की विशेषता और पूँजी के सांद्रण और केंद्रीकरण से आधुनिक साम्राज्यवाद के उदय में इज़ारेदारियों के निर्माण का महत्त्व नहीं समझ पाती हैं, क्योंकि पूँजी के संचय की उनकी आधारभूत अवधारणाएँ ही दोषपूर्ण हैं।

उनका सिद्धांत स्वाभाविक ही पूँजीवाद के 'अपरिहार्य विनाश' के निष्कर्ष पर पहुँचाता है क्योंकि पूँजीवाद का अस्तित्व ही उस ग़ैर-पूँजीवादी परिधि के अस्तित्व पर टिका है जिसे पूँजीवाद खुद ही नष्ट करता है। रोज़ा लक्ज़मबर्ग का विश्लेषण कि पूँजी के संचय से पिछड़े क्षेत्रों में प्राक्-पूँजीवादी संबंध टूट जाएँगे, और इससे युद्धों और क्रांतियों के द्वारा राष्ट्रीय मुक्ति होगी, और किसी सक्रिय राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के बारे में उनका आशावाद - ये सभी गलत हैं। मार्क्स स्पष्ट थे कि यदि अधीनस्थ लोग औपनिवेशिक वर्चस्व की गुलामी से खुद को मुक्त कर ले जाते हैं, तो पिछड़े क्षेत्रों के प्राक्-पूँजीवादी परिवेश में पूँजीवादी प्रवेश केवल उन भौतिक बुनियादों को तैयार करेगा, जिन पर पूँजीवादी विकास संभव है। हालांकि, ग़ैर-पूँजीवादी परिधि के पूँजीवादी रूपांतरण के बारे में रोज़ा लक्ज़मबर्ग का लेखन ग़ैर-द्वंद्वात्मक और अनैतिहासिक है क्योंकि यह इस तथ्य को पहचानने में नाकाम रहा है कि साम्राज्यवादियों के वर्चस्व से महज़ एक बहुत ही सीमित पूँजीवादी विकास हो सकता है और ज्यादातर तो यह ग़ैर-पूँजीवादी क्षेत्रों में उन्नत पूँजीवादी विकास को केवल अवरुद्ध करता है, रोकता है और पंगु बनाता है।

निष्कर्ष में, यह कहा जा सकता है कि रोज़ा लक्ज़मबर्ग का साम्राज्यवाद का सिद्धांत मूल रूप से एक मार्क्सवादी सिद्धांत नहीं है, बल्कि एक अल्पउपभोगवादी सिद्धांत है। रोज़ा की आजीवन कम्युनिस्ट क्रांतिकारी प्रतिबद्धता के बावजूद, उनका राजनीतिक अर्थशास्त्र मार्क्सवादी नहीं था। उनकी रचना का विवरणात्मक महत्त्व ज़रूर है क्योंकि यह पिछड़े क्षेत्रों में औपनिवेशिक हुकूमत और शोषण का विस्तार से वर्णन करती हैं। हालाँकि, पूँजीवादी विस्तार और पूँजी निर्यात के *मुख्य चालक* का उनका विश्लेषण त्रुटिपूर्ण है और फलस्वरूप उनका साम्राज्यवाद का सिद्धांत भी गलत है। फिर भी, उनके सिद्धांत ने साम्राज्यवाद के बारे में बहुत से मार्क्सवादी प्रतीत होने वाले सैद्धांतिकीकरण को प्रभावित किया है, ख़ासकर द्वितीय विश्व युद्ध के बाद - जिस दौरान 'विनिमय-संबंध दृष्टिकोण' का उदय हुआ जिसमें स्वीज़ी और बरान का 'इज़ारेदारी पूँजी' का स्कूल और ऐंड्रे गुंदर फ्रैंक का 'निर्भरता' का सिद्धांत, इमैनुअल वॉलरस्टाइन का 'विश्व व्यवस्था सिद्धांत' और आर्गिरी इमैनुअल का 'असमान विनिमय' थीसिस आती है। इस पेपर के अगले हिस्से में इन सिद्धांतों पर बात की जाएगी। अभी के लिए, हम साम्राज्यवाद के अगले बड़े मार्क्सवादी सिद्धान्तकर, निकोलाई बुखारिन की चर्चा करेंगे।

साम्राज्यवाद पर बुखारिन

साम्राज्यवाद के सवाल पर निकोलाई बुखारिन की रचना *Imperialism and World Economy* को पहली व्यवस्थित रचना माना जा सकता है क्योंकि हिल्फ़र्डिंग का ध्यान मुख्य रूप से वित्तीय पूँजी के नए चरण में मार्क्स की *पूँजी* को आगे बढ़ाना था और रोज़ा लक्ज़मबर्ग की रचना भी सामान्य रूप में राजनीतिक अर्थशास्त्र की थी जो सामान्य तौर पर पूँजीवादी विकास के अल्पउपभोगवादी सिद्धांत को प्रस्तुत करती थी। बुखारिन ने हिल्फ़र्डिंग के लेखन से काफ़ी मदद ली है मगर उनके दृष्टिकोण और पद्धति में हिल्फ़र्डिंग से भिन्नता दिखती है। बुखारिन अपना विश्लेषण विश्व अर्थव्यवस्था के उभार से शुरू करते हैं। साम्राज्यवाद के सिद्धांत में इस अवधारणा का केंद्रीय भूमिका है। वो विश्व अर्थव्यवस्था को निम्नलिखित तरीके से पारिभाषित करते हैं:

> "इस प्रकार हम वैश्विक अर्थव्यवस्था को उत्पादन संबंधों की एक प्रणाली के रूप में पारिभाषित कर सकते हैं और, तदनुसार, विश्व स्तर पर विनिमय संबंधों के रूप में।" (N. Bukharin, 2010, *Imperialism and World Economy,* Aakar Books, p. 26) (अनुवाद हमारा)

बुखारिन ने मार्क्स के तर्कों का पालन करने की कोशिश की और माल उत्पादन और विनिमय के क्रमिक विकास, इसके सामान्यीकरण और पूँजीवादी संबंधों के उदय के साथ विश्व पूँजीवादी व्यवस्था या विश्व अर्थव्यवस्था के विकास को रूपकों के माध्यम से दर्शाया। उनका तर्क है कि विश्व अर्थव्यवस्था उन्हीं अराजक, ग़ैर-विनियमित परिस्थितियों से ग्रस्त है, जिन्होंने *उत्तरवर्ती-19वीं और 20 वीं शताब्दी से पहले* यानि इज़ारेदारी वित्तीय पूँजी के युग से पहले राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में लगातार तबाही मचाई हुई थी। अपनी विश्व अर्थव्यवस्था की अवधारणा में बुखारिन श्रम के अंतरराष्ट्रीय विभाजन की तरफ़ इशारा करते हैं जोकि आरंभिक चरणों में प्राकृतिक विशेषताओं और बाद के दौर में उत्पादक शक्तियों के असमान विकास पर आधारित है। वो दिखाते हैं कि श्रम के अंतरराष्ट्रीय विभाजन से अंतरराष्ट्रीय विनिमय, मालो के विश्व बाज़ार का उदय, और फिर मुद्रा का एक विश्व बाज़ार बनता है। मुद्रा के विश्व बाज़ार के निर्माण के बारे में बुखारिन त्रुटिपूर्ण तरीके से मानते थे कि यह परिघटना मूल्य के नियम के हिसाब से नहीं बल्कि राष्ट्रीय भिन्नताओं के ख़त्म होने से उभरती है। श्रम का अंतरराष्ट्रीय विभाजन दुनिया के औद्योगिक क्षेत्रों (जो मैन्युफैक्चर्ड उत्पादों का निर्यात और कच्चे माल एवं खाद्यान्न का आयात करते हैं) और कृषि क्षेत्रों (जो कच्चे माल एवं खाद्यान्न का निर्यात और मैन्युफैक्चर्ड सामानों का आयात करते हैं) में विभाजन के रूप में अभिव्यक्त होता है। बुखारिन इस विभाजन की तुलना किसी पूँजीवादी देश के भीतर ही शहर और गांव के विभाजन से करते हैं। औद्योगिक क्षेत्र कस्बों के जैसे और कृषि क्षेत्र देहात के जैसे होते हैं। बुखारिन, विश्व अर्थव्यवस्था के विकास की प्रक्रिया को समझाते हुए तर्क देते हैं कि यह पूँजीवादी प्रणाली के व्यापक (क्षेत्रीय) और गहन (उत्पादन संबंधों के पूँजीवादी परिवर्तन) विस्तार का नतीजा है। उनके अनुसार, यह 19वीं शताब्दी के अंत में उत्पादक शक्तियों की अभूतपूर्व वृद्धि थी, जैसा कि बिजली उद्योग, रसायन उद्योग, इंजीनियरिंग उद्योग आदि में अभिव्यक्त हुआ, जिसने पूँजीवादी व्यवस्था के विस्तार और विश्व पूँजीवादी व्यवस्था के उदय को तेज गति प्रदान की। उत्पादक शक्तियों की तेजी से वृद्धि ने पूँजी के संचय की दर बढ़ा दी और पूँजी के सांद्रण और केंद्रीकरण को भी तेज कर दिया।

पूँजी के सांद्रण और केंद्रीकरण के कारण औद्योगिक इज़ारेदारी के साथ ही बैंकिंग इज़ारेदारी का उदय हुआ। बैंकिंग पूँजी और औद्योगिक इज़ारेदारी के मिश्रण से वित्तीय पूँजी का उदय हुआ, जिसकी अभिव्यक्ति वित्तीय कुलीनतंत्रों के बनने के रूप में हुई जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओं पर नियंत्रण रखते हैं। यह पूँजी के सांद्रण और केंद्रीकरण को और ज्यादा बढ़ा देता है, जिसके कारण राज्य के साथ राष्ट्रीय पूँजीवादी इज़ारेदारियों का मिश्रण हो जाता है। फलस्वरूप, खुद राष्ट्रीय राज्य ही पूँजीवादी राज्य इज़ारेदारी ट्रस्टों (capitalist state monopoly trusts) के रूप में उभरते हैं। फलस्वरूप, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएँ 'संगठित' हो जाती हैं। देश (जो बुखारिन के अनुसार अब एकाश्मी "प्रतिक्रियावादी समूह" के जैसा है) की संपूर्ण वित्तीय इज़ारेदारी पूँजी का प्रतिनिधित्व करने वाली राज्य इज़ारेदारी ट्रस्टों के उदय से उन्नत पूँजीवादी देशों में प्रतिस्पर्धा ख़त्म हो जाती है और मूल्य का नियम अप्रभावी हो जाता है। हालाँकि, राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा ख़त्म होती है पर विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धा का पुनरुत्पादन और ज्यादा प्रखर और हिंसक रूप में होता है। वित्तीय इज़ारेदारी पूँजी और राज्य इज़ारेदारी ट्रस्टों के उदय के पहले राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में जो अराजकता व्याप्त थी वो अब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्थानांतरित कर दी जाती है। अलग-अलग राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएँ केवल अंतरराष्ट्रीय संबंधों के माध्यम से पूँजीवादी उत्पादन की अराजकता के इन कानूनों से प्रभावित होती है। इसलिए, राष्ट्र के बुर्जुआ वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले राज्य इज़ारेदारी पूँजीवादी ट्रस्ट के उभार के साथ संकटों का विशुद्ध

आंतरिक आधार समाप्त हो गया था। अब प्रतिस्पर्धा विभिन्न पूँजीवादी राज्य इज़ारेदार ट्रस्टों के बीच होती थी क्योंकि आर्थिक इकाईयों का अब राजनीतिकरण हो चुका था और अब वे राज्य सीमाओं के द्वारा बाँट दी गई थीं। हालाँकि, उत्पादक शक्तियाँ उस अवस्था तक विकसित हो चुकी हैं जहाँ वे इन सीमाओं के भीतर बंध कर नहीं रह सकतीं। फलस्वरूप, पूँजी का अंतरराष्ट्रीयकृत होना अनिवार्य है। चूँकि सभी राष्ट्रीय पूँजी का अपने राज्य इज़ारेदार ट्रस्ट के द्वारा प्रतिनिधित्व किया जाता है, इसलिए इन राज्य इज़ारेदार ट्रस्टों के बीच संघर्ष तीखा हो जाता है। इस प्रकार पूँजी के अंतरराष्ट्रीयकरण को स्वयं राष्ट्रीय पूँजीवादी राज्य इज़ारेदार ट्रस्टों के राष्ट्रीय एकीकरण की आवश्यकता होती है। बुखारिन यहाँ पर राज्य इज़ारेदारी ट्रस्टों में संगठित पूँजीवादी हितों के अंतरराष्ट्रीयकरण के बिना ही पूँजी के अंतरराष्ट्रीयकरण और पूँजी के राष्ट्रीयकरण के बीच द्वंद्वात्मकता की तरफ़ इशारा करते हैं, जो अन्य राष्ट्रीय राज्य इज़ारेदारी ट्रस्टों के साथ अपनी पूँजी का अंतरराष्ट्रीयकरण करने हेतु प्रतिस्पर्धा करने के लिए राष्ट्रीय पूँजीवादी राज्यों के सुदृढ़ीकरण में अभिव्यक्त होता है। बुखारिन की पूरी तर्क पद्धति निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट हो जाती है:

> "...विश्व पूँजीवाद के उत्पादक शक्तियों के विकास ने पिछले दशकों में अभूतपूर्व प्रगति की है। प्रतिस्पर्धी संघर्ष में हमेशा बड़े-स्तर के उत्पादन को ही फ़ायदा हुआ है; इसने "पूँजी के थैलीशाहों" को एक बख्तरबंद संगठन में समेकित किया है, जिसने पूरे आर्थिक जीवन का कब्ज़ा कर लिया है। राज्य की सत्ता एक वित्तीय कुलीनतंत्र बन गई है; और ये कुलीनतंत्र उत्पादन का प्रबंधन करते हैं जो बैंकों द्वारा गाँठ से जुड़े हैं। उत्पादन के संगठन की यह प्रक्रिया नीचे से आगे बढ़ी है; उसने खुद को आधुनिक राज्यों के ढांचे के भीतर दृढ़ किया है, जो कि वित्त पूँजी के हितों की सटीक अभिव्यक्ति बन गए हैं। पूँजीवादी रूप से उन्नत सभी ‘‘राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएँ’’ किसी प्रकार के ‘‘राष्ट्रीय’’ ट्रस्ट में बदल गई हैं। दूसरी तरफ़, विश्व अर्थव्यवस्था के आर्थिक रूप से उन्नत हिस्सों के संगठित होने की प्रक्रिया के साथ ही उनके बीच की प्रतिस्पर्धा अभूतपूर्व से तीखी हो गई है।" (*ibid,* p. 108) (अनुवाद हमारा)

बुखारिन का एक महत्त्वपूर्ण योगदान ये है कि वो पूँजी के अंतरराष्ट्रीयकरण में स्पष्टतः लाभप्रदता के संकट को प्रेरक शक्ति के तौर पर देखते हैं, जैसा कि माल और पूँजी के निर्यात से भी जाहिर होता है। बुखारिन ठीक बोलते हैं कि पूँजी के इस अंतरराष्ट्रीयकरण के लिए पूँजीवादी राज्य के सुदृढ़ीकारण की आवश्यकता होती है, हालाँकि, वो अपने तर्क का ग़ैर-द्वंद्वात्मक तरीके से विस्तार करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं से प्रतिस्पर्धा पूरी तरह से ख़त्म हो जाती है। बुखारिन ने यह मानकर त्रुटि की कि राज्य इज़ारेदारी ट्रस्टों के निर्माण और बाद में राज्य पूँजीवाद के और भी शुद्ध स्वरूप के परिणामस्वरूप प्रतिस्पर्धा का खात्मा हो जाता है और इसलिए राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में मूल्य का नियम भी लागू होना बंद हो जाता है। बुखारिन के इस तर्क में हिल्फ़र्डिंग का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, हालांकि वह अलग निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा ख़त्म होती है पर साथ ही इन राज्य पूँजीवादों के बीच विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धा का पुनरुत्पादन और ज्यादा प्रखर और हिंसक रूप में होता है।

निरंकुश राज्य व्यवस्था के गठन पर अपना ध्यान देना बुखारिन का एक अन्य योगदान था, हालांकि यहां भी, बुखारिन ने इस तर्क को गैर-द्वंद्वात्मक और यांत्रिक निष्कर्षों तक विस्तार दिया है। उन्होंने त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष निकाला कि संसदें अब पूँजीवाद के लिए पुरानी पड़ चुकी हैं, अर्थात् पूँजीपति वर्ग के विभिन्न वर्गों/गुटों के बीच विरोधाभासों के निपटान की अब ज़रूरत नहीं है। बुखारिन के मुताबिक उदारवादी स्वतंत्रताएं (Liberal freedoms) अब अपने पुराने अस्तित्व की छायामात्र हैं। पूँजीवाद अपने इज़ारेदारी चरण में कोई लोकतांत्रिक अधिकार नहीं दे सकता है। अब समाजवादी क्रांति का चरण प्रासंगिक हो गया है और समाजवाद का संसदीय रास्ता पूरी तरह से अकल्पनीय हो गया है। दूसरे मुद्दे पर बुखारिन पूरी तरह से सही थे, हालांकि, उनका पहला तर्क सामान्यीकृत नहीं किया जा सकता था और यह उन पर ट्रॉट्स्की के विचारों के प्रभाव को दर्शाता है।

बुखारिन का दूसरे इंटरनेशनल के पतन का ब्यौरा भी मोटे तौर पर सही है। उनका तर्क है कि दूसरे इंटरनेशनल का पतन एक दुर्घटना नहीं बल्कि साम्राज्यवाद के चरण का परिणाम था। मजदूर वर्ग के नेताओं को एक दोहरी प्रक्रिया में सहयोजित कर लिया गया था। एक तरफ तो उन्होंने बढ़े हुए राज्य नियंत्रण की समाजवाद के रूप में पहचान की और राज्य इज़ारेदारी पूँजीवाद को ही समाजवाद समझा और राष्ट्रीय राज्य पूँजीवाद को अपना समर्थन दे दिया। दूसरे, पिछड़े क्षेत्रों की साम्राज्यवादी लूट ने साम्राज्यवादी बुर्जुआ नेताओं को इन नेताओं को घूस

खिलाने की सहूलियत प्रदान की जिससे श्रम के अभिजात्य वर्ग और ट्रेड यूनियन नौकरशाही का जन्म हुआ जो मजदूर वर्ग की बजाय पूँजीपति वर्ग के हितों को लेकर ज्यादा चिंतित थी। हालाँकि, बुखारिन निश्चिंत थे कि मजदूर वर्ग के आंदोलन में इस अवसरवाद, जिसका प्रतिनिधित्व काउत्स्की कर रहा था, के दिन गिने-चुने थे। बुखारिन के अनुसार पूँजीवाद के अंतरविरोधों ने विश्वयुद्धों की शृंखला की शुरुआत कर दी थी। हालाँकि, जब बुखारिन ने युद्ध और क्रांति के बीच मजबूत संबंध दिखाए तो एक गंभीर गलती की। यद्यपि साम्राज्यवादी युद्धों के साथ इतने अनमनीय रूप से (rigidly) क्रांति को जोड़ना पहली मर्तबा एक क्रांतिकारी तर्क लग सकता है, लेकिन यह सर्वहारा वर्ग को युद्धों के बीच के काल में, शांतिकाल में क्रांति के लिए अनुकूल परिस्थितयों का लाभ उठाने से और युद्ध के खतरों के ख़िलाफ़ लड़ने से भी बेहथियार कर देता है। यहां भी, द्वंद्वात्मक तौर-तरीके की कमी स्पष्ट है।

बुखारिन का तर्क है कि राष्ट्रीय पूँजीवादी ट्रस्टों के उदय ने एक उच्च सामाजिक व्यवस्था, अर्थात् समाजवाद, के लिए जमीन तैयार करने के लिए अभूतपूर्व सामाजीकरण किया है और उत्पादन को संगठित किया है। उन्होंने काउत्स्की के 'अति-साम्राज्यवाद' और पूँजीवादी शांति के सिद्धांत को खारिज कर दिया। बुखारिन के लिए, राज्य इज़ारेदारी ट्रस्टों और अंतरराष्ट्रीय इज़ारेदारियों का संघ*सैद्धांतिक रूप से संभाव्य* मगर व्यावहारिक रूप से असंभव था क्योंकि संघ के अधिक उत्पादक और दक्ष सदस्यों को ऐसे संघ के द्वारा थोपी गई बाध्यताएँ स्वीकार्य नहीं होंगी। इसके अलावा सभी राज्य इज़ारेदारी ट्रस्ट अति-साम्राज्यवादी राज्य बनना चाहेंगे जब तक कि उनमें से कोई एक बन नहीं जाता और युद्धों के कारण वर्ग संघर्ष तीखा होगा और फलस्वरूप क्रांति होगी या विध्वंस होगा। हालाँकि, यह स्पष्ट नहीं है कि बुखारिन ने वही तर्क राष्ट्र के भीतर ही इज़ारेदारियों के संघ पर (ऐसे किसी भी संघ को अस्थायी मानते हुए) क्यों नहीं लागू किया। वो किसी अंतरराष्ट्रीय कार्टेल के उभार को या राज्य इज़ारेदारी ट्रस्टों के स्थाई संघ को *सैद्धांतिक रूप से संभाव्य* मानते हैं। यह भी एक कारण है कि क्यों बुखारिन के द्वारा काउत्स्की की आलोचना राजनीतिक रूप से तो सही है मगर उनके अपने ही आर्थिक विश्लेषण से पूरी तरह मेल नहीं खाती; काफ़ी बनावटी है, जबकि लेनिन के द्वारा काउत्स्की की आलोचना कहीं ज्यादा द्वंद्वात्मक है, उनके आर्थिक विश्लेषण से मेल खाती है और जैविक है। जब लेनिन ने बुखारिन की किताब की भूमिका लिखी थी, तो वे भी अंतरराष्ट्रीय कार्टेल और राज्य इज़ारेदारी ट्रस्टों के संघ को सैद्धांतिक रूप से संभाव्य मानने के पक्षधर थे। हालाँकि, बाद में *साम्राज्यवाद: पूँजीवाद की चरम अवस्था* में, लेनिन इस विचार का बाकायदा खंडन करते हैं और तर्क देते हैं कि यह सैद्धांतिक रूप से भी संभव नहीं है।

साम्राज्यवाद और युद्ध के विश्लेषण ही लेनिन और बुखारिन के बीच सहमति वाले बिंदु हैं; दोनों का मानना है कि साम्राज्यवाद का मतलब युद्ध है, हालांकि बुखारिन के युद्ध और क्रांति की यांत्रिक कारणात्मक सम्बंध (causal link) से लेनिन सहमत नहीं हैं। दूसरे, उनमें से दोनों का मानना है कि साम्राज्यवाद या वित्त इज़ारेदार पूँजीवाद, पूँजीवाद के एक नए और अंतिम चरण का गठन करते हैं। और तीसरे, वो काउत्स्की के और उस ऑस्ट्रो-मार्क्सवादी अवसरवाद की भी आलोचना करते हैं, जिसका प्रदर्शन हिल्फ़र्डिंग ने किया। हालाँकि, उनके बीच कई महत्त्वपूर्ण बिंदुओं पर असहमतियाँ भी हैं। एक का उल्लेख पहले ही हो चुका है, अर्थात् लेनिन बुखारिन के इस विचार से असहमत थे कि साम्राज्यवाद के युग में राष्ट्रीय पूँजीवाद के भीतर प्रतिस्पर्धा ख़त्म हो जाती है। दूसरे, बुखारिन के अनुसार राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा के ख़त्म होने से राष्ट्रीय राज्य इज़ारेदारी ट्रस्टों के बीच प्रतिस्पर्धा युद्ध का कारण है, जबकि लेनिन के अनुसार साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा का कारण असमान विकास के नियम में ही निहित है। कुल मिलाकर, लेनिन का तौर-तरीका बुखारिन की तुलना में ज्यादा द्वंद्वात्मक और ग़ैर-रैखीय है, जैसा कि हम लेनिन के साम्राज्यवाद के सिद्धांत की चर्चा करते वक़्त देखेंगे।

बुखारिन की रचना की कुछ और कमियाँ भी हैं। उदाहरण के लिए, बुखारिन मानते हैं कि राज्य और पूँजी का मिश्रण वित्तीय इज़ारेदारी पूँजी के दौर में पूँजीवाद के सामान्य रुझान का हिस्सा है। हालाँकि, पूँजीवाद के इतिहास ने दिखाया है कि यह संबंध ऐतिहासिक रूप से असामान्य है और इसे पूँजीवाद का अंतरनिहित रुझान नहीं कहा जा सकता। अनुभव ने, खासतौर पर 1970 के दशक से, दर्शाया है कि यह संबंध कहीं ज्यादा लचीला है और इसमें बदलाव संभव है।

इसके अलावा, मेरी राय में बुखारिन ने इस रचना में राजनीतिक अर्थशास्त्र से जुड़ी कुछ बहुत स्पष्ट गलतियाँ की हैं। जबकि अन्यथा इस रचना में मार्क्स की विधि का पालन करने के लिए बहुत मेहनत की गई है। उदाहरण के लिए, जैसा कि ऊपर उल्लिखित है, वो मानते हैं कि वैश्विक

कीमतें मूल्य के नियम के अनुसार नहीं तय होती हैं। इसी तरह उनका मानना है कि जिस तरह अंतरराष्ट्रीय रूप से एकरूप हो जाने से मुनाफ़े की औसत दर का निर्माण होता है और पूँजी निर्यात निर्धारित होता है, वैसे ही अधिक मजदूरी क्षेत्रों में श्रम शक्ति के पलायन से मजदूरी भी एकरूप हो जाती है। यह सही नहीं है क्योंकि बुखारिन एक मूलभूत बिंदु भूल जाते हैं कि साम्राज्यवादी अवस्था पूँजी के अंतरराष्ट्रीयकरण को दर्शाती है, लेकिन राज्य की विभिन्न युक्तियों की वजह से श्रम का अंतरराष्ट्रीयकरण बाधित होता है। यहाँ तक कि साम्राज्यवाद की वर्तमान अवस्था भी, यानि भूमंडलीकरण पूँजी का भूमंडलीकरण है, न कि श्रम का।

बुखारिन के साम्राज्यवाद के सिद्धांत का समाहार करते हुए ये कहा जा सकता है कि पूँजी निर्यात के निर्धारक कारक के रूप में लाभप्रदता पर उनका जोर, वित्त इज़ारेदारी पूँजीवाद की पूँजीवाद के नए भिन्न चरण के रूप में पहचान, अवसरवाद का खंडन, उत्पादन की पूँजीवादी प्रणाली के मौलिक रुझानों के फलस्वरुप विश्व अर्थव्यवस्था के क्रमिक विकास का उनका विस्तृत विश्लेषण, उनके सिद्धांत के कुछ सकारात्मक योगदान हैं। हालाँकि, उनका यह मानना कि राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर प्रतिस्पर्धा ख़त्म होकर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आ जाती है, इससे हिल्फ़र्डिंग के 'संगठित पूँजीवाद' के सिद्धांत को नई जान मिल जाती है और यह साम्राज्यवाद से संबंधित सभी मुद्दों पर उनके राजनीतिक दृष्टिकोण को प्रभावित करता है। कुल मिलाकर, उनकी पद्धति में द्वंद्वात्मकता की कमी है और उनपर यांत्रिक और रैखीय पद्धति का गहन प्रभाव है। नतीजतन, डेटा की प्रचुरता, विषय-वस्तु का विस्तार, विश्व अर्थव्यवस्था के क्रमिक विकास की व्यवस्थित व्याख्या, और साम्राज्यवाद का विश्लेषण करने में *पूँजी* की विधि का पालन करने के प्रयासों के बावजूद, बुखारिन की रचना में लेनिन की तुलना में स्पष्ट रूप से द्वंद्वात्मक पद्धति और सामान्यीकरण के उच्च स्तर का अभाव है।

साम्राज्यवाद पर लेनिन का सिद्धांत

लेनिन के सिद्धांत को साम्राज्यवाद पर सबसे महत्त्वपूर्ण मार्क्सवादी सिद्धांत कहा जा सकता है। दो बिंदु हैं जो लेनिन के सिद्धांत को उस काल के दौरान प्रस्तुत साम्राज्यवाद के अन्य मार्क्सवादी सिद्धांतों से अलग करती हैं। पहला है कि लेनिन का साम्राज्यवाद का सिद्धांत जिसका उद्देश्य 19वीं सदी के अंत में केवल पूँजीवादी व्यवस्था के बदलाओं की व्याख्या करना भर नहीं है, बल्कि विश्व सर्वहारा क्रांति के लिए इस सिद्धांत की मदद से रणनीति और सामान्य रणकौशल का निगमन करना भी है। ये विशेषता मजदूर वर्ग के आंदोलन और साथ ही उस दौर के क्रांतिकारी कम्युनिस्ट आंदोलन के महत्त्वपूर्ण सवालों को लेकर लेनिन के दृष्टिकोण में भी झलकती है। लेनिन के सिद्धांत की दूसरी अभिलाक्षणिकता है कि यद्यपि साम्राज्यवाद के चरण में पूँजीवाद की विभिन्न अभिलाक्षणिक विशेषताओं पर यह पूरी तरह से मूल शोध नहीं है, मगर, हिल्फ़र्डिंग या बुखारिन की तुलना में द्वंद्वात्मक पद्धति का उच्च स्तर का प्रयोग और सामान्यीकरण का और भी ऊँचा स्तर इसकी ख़ासियत है। लेनिन के साम्राज्यवाद के विश्लेषण की इन दो अभिलाक्षणिकताओं के कारण यह साम्राज्यवाद के सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रमुख मार्क्सवादी सिद्धांत के रूप में उभर कर आया और मेरी राय में अभी भी इसका वही स्थान है, इस तथ्य के बावजूद कि भूमंडलीकरण की *अवस्था* में साम्राज्यवाद की *कार्य प्रणाली* में कई महत्त्वपूर्ण मात्रात्मक परिवर्तन आए हैं जिनके लिए लेनिनवादी दृष्टिकोण से ताज़ा विश्लेषण की ज़रूरत है।

लेनिन की पुस्तिका *साम्राज्यवाद: पूँजीवाद की चरम अवस्था* का उपशीर्षक है 'एक सरल रूपरेखा।' हालांकि, इस विनम्र उपशीर्षक से किसी को गुमराह नहीं होना चाहिए। इस 'सरल रूपरेखा' के पीछे जबरदस्त शोधकार्य किया गया था। Lenin's collected works का खंड 39, 'Notebooks on Imperialism', कुल 900 पन्नों का है। 150 किताबों और 240 लेखों से यह पुस्तिका तैयार हुई थी। साम्राज्यवाद के विषय पर काम शुरू करने से पहले, लेनिन ने लगभग वो सबकुछ पढ़ डाला जो उन्हें ज़ुरिच में उपलब्ध हो सका। हमें यह बात भी कतई नहीं भूलनी चाहिए कि लेनिन के सम्राज्यवाद के सिद्धांत का विश्लेषण महज़ इस छोटी सी पुस्तिका के आधार पर नहीं किया जा सकता और इसे अनिवार्यतः अन्य महत्त्वपूर्ण लेखों के साथ पढ़ा जाना चाहिए, जिनका उतना ज्यादा नाम नहीं हो पाया। उदाहरण के लिए, उनके लेख जैसे 'A Caricature of Marxism and Imperialist Economism', 'Imperialism and Socialism in Italy', 'Imperialism and Split in Socialism', 'The Nascent Trend of Imperialist Economism', इत्यादि। लेनिन की यह पुस्तिका साम्राज्यवाद पर उनकी सबसे निर्णायक रचना बन गई, पर 'Notebooks on Imperialism' को भी ज़रूर पढ़ा जाना चाहिए।

लेनिन के साम्राज्यवाद के सिद्धांत के विश्लेषण पर विचार करने से पहले हमें एक और बात याद रखनी चाहिए, जिसका ध्यान रखने के लिए लेनिन ने हमसे आग्रह किया है। पहला, वो चेताते हैं कि पुस्तिका ज़ारवादी (czarist) सेंसरशिप से बच निकलने के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर लिखी गई थी और इसलिए उन्हें खुद को कठोरता से सैद्धांतिक मुद्दों तक ही सीमित रखना पड़ा, विशेष रूप से तथ्यों के आर्थिक विश्लेषण तक। दूसरे, जब भी कभी उन्हें राजनीति पर कुछ ज़रूरी टिप्पणी सूत्रबद्ध करनी होती थी, तो उन्हें संकेतों का या "इसोपियन भाषा (Aesopean language)" का इस्तेमाल करना पड़ता था। लेनिन लिखते हैं, "आज़ादी के इन दिनों में पुस्तिका के उन वाक्यों को फिर पढ़ना बड़ा कष्टदायी है, जो सेंसर के कारण विकृत हो गए हैं, घुट गए हैं, मानो लोहे के शिकंजे में कुचल दिए गए हों।" (लेनिन, *साम्राज्यवाद, पूँजीवाद की चरम अवस्था,* राहुल फ़ाउंडेशन, जनवरी, 2008, पृ. 7) लेनिन बिल्कुल स्पष्ट कर देते हैं कि इन सीमाओं के कारण इस रचना का दुरुपयोग और इसकी गलत व्याख्या किए जाने का ख़तरा काफ़ी है। पिछले 100 सालों में लेनिन की रचना के कई अकादमीशियनों द्वारा किए गए आलोचनात्मक मूल्यांकन के आधार पर ये बिना किसी शंका के कहा जा सकता है कि लेनिन की आशंका निराधार नहीं थी।

एक और चीज के बारे में लेनिन बहुत शुरुआत में चेतावनी देते हैं कि यह पाठ केवल साम्राज्यवाद का आर्थिक सार पेश करने के लिए है पर इसका ये मतलब कतई नहीं है कि इस घटना के राजनीतिक, वैचारिक और सांस्कृतिक पहलुओं का अध्ययन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। न ही इसका ये मतलब है कि ये पहलू महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। बल्कि, इन पहलुओं का संपूर्ण विश्लेषण वांछित भी है और आवश्यक भी। 'प्रस्तावना' में ही दी गई इस शर्त के बावजूद, कई बुर्जुआ अकादमीशियनों और कुछ "मार्क्सवादियों" ने भी लेनिन पर साम्राज्यवाद के विचारधारात्मक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहलुओं की अनदेखी का आरोप लगाया है। मेरी राय में, लेनिन के विचारों का आकलन करने के लिए 1920 में प्रकाशित 'फ्रांसीसी और जर्मन संस्करणों की प्रस्तावना' को पढ़ना बहुत महत्वपूर्ण है। इन प्रारंभिक टिप्पणियों के साथ हम लेनिन के साम्राज्यवाद के सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण आकलन कर सकते हैं।

हमें लेनिन की रचना का सारांश देने की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, उनके सिद्धांत के बुनियादी सूत्रों का संक्षेप में दोहराया गया है। लेनिन अपने विश्लेषण के लिए मुख्यतः दो रचनाओं को अपना आधार बनाते हैं। पहली थी जे.ए. हॉब्सन की *साम्राज्यवाद* और दूसरी थी रुडोल्फ़ हिल्फ़र्डिंग की *वित्तीय पूँजी।* पूँजीवाद के नवीनतम चरण के विश्लेषण की मूलभूत श्रेणियाँ, जिसका लेनिन अपनी रचना में प्रयोग करते हैं, वो उनके मूल विचार नहीं हैं। उदाहरण के लिए, इज़ारेदारियों का बनना, वित्तीय पूँजी की अवधारणा, और पूँजी का निर्यात वो श्रेणियाँ हैं जिनके प्रयोग की शुरुआत साम्राज्यवाद के विश्लेषण में लेनिन से पहले हॉब्सन, हिल्फ़र्डिंग और बुखारिन ने की थी। एक जैसी अवधारणाओं और श्रेणियों का उपयोग नहीं, बल्कि इन अवधारणाओं और श्रेणियों पर द्वंद्वात्मक पद्धति से विचार करने की प्रक्रिया है, जो लेनिन के काम का विशिष्ट अंतर है।

लेनिन उत्पादन के सांद्रण और केंद्रीकरण (यद्यपि वो 'केंद्रीकरण' शब्द का प्रयोग कभी-कभी ही करते हैं लेकिन इस मुद्दे पर उनकी विचार प्रक्रिया में निश्चित तौर पर दोनों ही प्रक्रियाएँ आती हैं) की प्रक्रिया के विश्लेषण से शुरुआत करते हैं। ये पूँजीवादी संचय के सारभूत रुझान हैं। हालाँकि, 19वीं सदी के अंत में वो गुणात्मक रूप से नए चरण में पहुँच गए, लेनिन के अनुसार ख़ासकर 1870 के दशक से। वो तर्क देते हैं:

> "इससे ये देखा जा सकता है कि अपने विकास सांद्रण के एक निश्चित चरण में ये सीधे इज़ारेदारी को जन्म देता है, क्योंकि कुछ विशालकाय उद्यम आसानी से आपस में रजामंदी पर पहुँच सकते हैं, और दूसरी तरफ़ उद्यमों के विशाल आकार के कारण, प्रतिस्पर्धा अवरोधित होती है और इज़ारेदारी की तरफ़ बढ़ने का रुझान पैदा होता है।" (*ibid,* p. 17) (अनुवाद हमारा)

आज कई राजनीतिक अर्थशास्त्री ऐसे हैं जिन्होंने लेनिन के इज़ारेदारी की अवधारणा को प्रतिस्पर्धा के निषेध के रूप में गलत तरीके से दर्शाया है। हम विस्तार से देखेंगे कि ऐसा नहीं है। हालाँकि, यहाँ हम दिखाएँगे कि ऐसे राजनीतिक अर्थशास्त्रियों के बारे में लेनिन क्या कहना है:

> "आधी सदी पहले, जब मार्क्स *पूँजी* लिख रहे थे, अर्थशास्त्रियों के भारी बहुमत के लिए मुक्त प्रतिस्पर्धा एक "प्राकृतिक नियम" थी। शासकीय विज्ञान ने मार्क्स की रचनाओं को ख़त्म करने की कोशिश की ...जिन्होंने पूँजीवाद के सैद्धांतिक और ऐतिहासिक विश्लेषण द्वारा साबित कर दिया था कि मुक्त प्रतिस्पर्धा उत्पादन के सांद्रण को जन्म देती है, जो बदले में, विकास के एक निश्चित

> चरण में, इज़ारेदारी होती है। आज, इज़ारेदारी एक तथ्य बन चुकी है। अर्थशास्त्री पुस्तकों के पहाड़ लिख रहे हैं जिसमें वे इज़ारेदारी की विविध अभिव्यक्तियों की व्याख्या करते हैं, और कोरस में घोषणा करते रहते हैं कि "मार्क्सवाद को खारिज कर दिया गया है"। लेकिन तथ्य हठीले होते हैं ... तथ्यों से पता चलता है कि ... इज़ारेदारी का उदय, उत्पादन के सांद्रण के परिणामस्वरूप, पूँजीवाद के विकास के वर्तमान स्तर का एक सामान्य और मौलिक कानून है।" (*ibid,* p. 20) (अनुवाद हमारा)

लेनिन ने कभी भी इज़ारेदारी को प्रतिस्पर्धा के निषेध या इसकी अनुपस्थिति के रूप में नहीं देखा; न ही वो "मुक्त प्रतिस्पर्धा" के निष्पक्ष और मुक्त या दोषहीन होने जैसे कोई नवक्लासिकी विचार रखते थे। इज़ारेदारी से उनका मतलब इस तथ्य से है कि पूँजी का बढ़ता हुआ सांद्रण और संकेंद्रण अपने विकास की एक गुणात्मक रूप से उच्चतर अवस्था में छोटी पूँजी की विख्यात स्वतंत्रता को बड़ी संख्या में तहस-नहस कर देती है। इसका कहीं से भी ये मतलब निकल कर नहीं आता है कि ये छोटी पूँजी (small capitals) अपनी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा में नैतिक, कर्तव्यपरायण या निष्पक्ष थीं। दूसरे, लेनिन दर्शाते हैं कि उद्योग की हर शाखा में सक्रिय पूँजी की संख्या में भारी घटोत्तरी और उनके आकार में विशाल होने के साथ ही, प्रतिस्पर्धा की प्रकृति में परिवर्तन तो आते हैं। अंत में, लेनिन उत्पादन के सामाजीकरण के स्तर के मुकाबले मुक्त प्रतिस्पर्धा और इज़ारेदारी के चरणों को भी देखते हैं। प्रतिस्पर्धा से अप्रत्याशित रूप से उत्पादन का सामाजीकरण होता है। लेनिन न तो इससे ज्यादा कुछ कहते हैं, न ही कम। हालांकि, अनवर शेख जैसे एक अच्छे राजनीतिक अर्थशास्त्री ने भी लेनन की इज़ारेदारी की अवधारणा को गलत समझा है। आइए देखते हैं कि इज़ारेदारी और प्रतिस्पर्धा के बीच संबंध पर लेनिन का क्या कहना है:

> "इसी समय, मुक्त प्रतिस्पर्धा से निकले हुए इज़ारेदार, प्रतिस्पर्धा को समाप्त नहीं करते हैं, बल्कि इसके ऊपर और इसके साथ मौजूद होते हैं, और इस प्रकार बहुत प्रखर, प्रचंड शत्रुताओं, टकरावों और संघर्षों को जन्म देते हैं।" (*ibid,* p. 83) (अनुवाद हमारा)

इसके अलावा, लेनिन स्पष्ट रूप से कहते हैं कि इज़ारेदारी की अवस्था में भी, अर्थव्यवस्था में नए क्षेत्रों के खुलने से नई इज़ारेदारियाँ उभरती हैं या पहले से ही मौजूद क्षेत्रों में भी नई इज़ारेदारियाँ उभरती हैं जिससे प्रतिस्पर्धा का उदय होता है; इज़ारेदारी और ग़ैर-इज़ारेदारी क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा होती है और मौजूदा इज़ारेदारियों में आपस में प्रतिस्पर्धा होती है।

इज़ारेदारी की अवस्था के साथ, कई घटनाएँ जुड़ी हैं, जिनका लेनिन उल्लेख करते हैं। एक है, जैसा कि उल्लेख किया गया, उत्पादन और साथ ही तकनीकी खोजों का अप्रत्याशित सामाजीकरण, जिससे ये विशाल इज़ारेदारियाँ किसी देश में, या कई देशों में या पूरी दुनिया में भी कच्चे माल की उपलब्धता का सन्निकट अनुमान लगा पाने में सक्षम होती हैं। हालाँकि, हिल्फ़र्डिंग और एक हद तक बुखारिन से काफ़ी अलग तरीका अपनाते हुए लेनिन निष्कर्ष निकालते हैं कि इसमें उत्पादन की अराजकता को दूर करने की क्षमता होती है। पर इससे वास्तव में उत्पादन की अराजकता दूर नहीं होती, न ही राष्ट्रीय न ही अंतरराष्ट्रीय स्तर पर। इज़ारेदारीकरण से लेनिन एक और निष्कर्ष निकालते हैं कि जिस हद तक उत्पादन का यह सामाजीकरण समाजवाद के लिए आवश्यक पूर्व-शर्त पैदा करता है और पूँजीवाद के दायरे में निजी संपत्ति का निषेध करता है, उस हद तक यह पूँजीवाद और एक उच्चतर सामाजिक व्यवस्था के बीच संक्रमणकालीन चरण होता है। लेनिन स्पष्ट तौर पर कहते हैं कि इज़ारेदारी न तो प्रतिस्पर्धा ख़त्म करती है, न ही उत्पादन की अराजकता, और न ही बार-बार आने वाले संकटों को रोक पाती है। यद्यपि पहले अनुभाग में, उनका संकटों का विवरण ज्यादा असमानुपतिकता के संकटों पर निर्भर करता है, पर बाद में उनके विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि निवेश, पूँजी निर्यात और साथ ही संकटों के भी मुख्य आधारभूत कारण के रूप में वो लाभप्रदता की गति को ही देखते हैं।

मोटे तौर पर हिल्फ़र्डिंग के विश्लेषण का अनुसरण करते हुए, यद्यपि संक्षेप में, मगर सामान्यीकरण के एक उच्चतर स्तर पर, वो तर्क करते हैं कि बैंकों की भूमिका भुगतान करने वाले मध्यस्थों से बदलकर उद्योग को नियंत्रित करने वाली ताकत के रूप में हो जाती है। लेनिन के अनुसार इसका कारण है पूँजी का बढ़ता सांद्रण और संकेंद्रण और उत्पादन का बढ़ता स्तर जिससे किसी निवेश के लिए या किसी निवेश के नवीनीकरण के लिए बड़ी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है। बैंकों के नियंत्रण में भारी मात्रा में मुद्रा-पूँजी होती है। यह उस अवस्था में बैंकों की बढ़ती ताकत का स्रोत होता है जबकि पूँजी के सांद्रण से इज़ारेदारियों का उदय हो चुका है। लेनिन उस प्रक्रिया के बारे में विस्तार से बताते हैं, जिसके माध्यम से बैंक उद्योग और उनके निवेश को नियंत्रित करना शुरू करते हैं, जिस तरह से बैंक इज़ारेदारी, कार्टेलों, ट्रस्टों और सिंडिकेटों के गठन को बढ़ावा देते हैं और अंततः जिस तरह से ये शक्तिशाली बैंक खुद इज़ारेदारी की प्रक्रिया से गुजरते हैं और राज्य और

इसकी नीतियों को प्रभावित करना शुरू करते हैं। औद्योगिक क्षेत्र और बैंकिंग में सांद्रण एक सहजीवी प्रक्रिया है, जो एक दूसरे को गति प्रदान करती है। बैंकिंग पूँजी का औद्योगिक पूँजी के साथ मिश्रण हो जाता है क्योंकि बैंक भी उद्योग में अपना पूँजी निवेश करने के लिए बाध्य हैं ताकि वे अपने खाताधारकों के ब्याज का भुगतान कर सकें। केंद्रीय राज्य बैंकों के उदय और राज्य की डाकखाना बचत खाता योजना आदि से यह और भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो जाता है। इससे बैंक पूँजी के औद्योगिक पूँजी के साथ मिश्रित होने की आवश्यकता बढ़ जाती है। इससे वित्त पूँजी का उदय होता है जिसमें लेनिन के अनुसार, बैंक पूँजी चालक की सीट पर होती है। यह वित्तीय पूँजी कुछ मुट्ठी भर वित्तीय कुलीनों के हाथों में केंद्रित होती है जो कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के बड़े हिस्से को नियंत्रित करना शुरू कर देते हैं। लेनिन यह भी दिखाते हैं कि कैसे बैंक राष्ट्रीय बहीखाते के संस्थानों के रूप में उभरते हैं जो श्रम के सामाजिक विभाजन का निर्धारण करने की स्थिति में होते हैं। यह एक ऐसा तंत्र तैयार करता है जो समाजवादी प्रणाली द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है ताकि अर्थव्यवस्था के विभिन्न शाखाओं में श्रम के उत्पादन और सामाजिक विभाजन के वितरण का निर्धारण किया जा सके। लेकिन उसके लिए ये केवल आधार तैयार करते हैं। उत्पादन के सामाजीकरण के बावजूद वो कभी खुद ऐसा नहीं कर सकते क्योंकि अधिशेष का विनियोजन निजी होता है।

लेनिन के विश्लेषण का एक पहलू ऐसा है जिसे पिछले 100 सालों में साम्राज्यवाद के वास्तविक विकास ने गलत साबित किया है। उनका तर्क है कि वित्त इज़ारेदारी पूँजी की उम्र में स्टॉक एक्सचेंज की भूमिका कम हो जाएगी क्योंकि स्टॉक एक्सचेंज जो एक सटीक मापन रॉड के रूप में कार्य करते थे और मुक्त प्रतिस्पर्धा के युग में आर्थिक क्रियाकलापों के एक स्वचालित नियामक थे, वह अप्रासंगिक हो जाएगा क्योंकि वित्त पूँजी और औद्योगिक पूँजी पर बैंक पूँजी के प्रभुत्व के युग में, हर बैंक एक स्टॉक एक्सचेंज बन जाएगा। इसमें आंशिक सच्चाई है लेकिन यह मूल्यांकन सही नहीं है। हालाँकि, यदि हम स्टॉक विनिमय के पूरे हिस्से को पढ़ें तो इसमें स्टॉक विनिमय के ऊपर बैंकों के बढ़ते प्रभुत्व और उसके कारण मुक्त प्रतिस्पर्धा के दौर से (जब वो सेक्योरिटी के मुक्त संचरण और इस तरह आर्थिक गतिविधि के विनियामक के रूप में काम करते थे) उनकी प्रकृति में आया कुल परिवर्तन भी अंतर्निहित हो सकता है। जहाँ तक लेनिन का मतलब मुक्त प्रतिस्पर्धा और मुक्त व्यापार के दौर में सेक्योरिटी के मुक्त संचरण का स्थान स्टॉक विनिमय (Stock Exchanges) के होने से है, तो स्टॉक विनिमय अब अस्तित्व में नहीं हैं और इज़ारेदारी वित्त पूँजी के दौर में उन पर बैंकों की असीमित ताकत का प्रभुत्व हो जाता है, जिन्होंने वस्तुतः स्टॉक विनिमय को ख़त्म कर दिया है, तो ये सैद्धांतिकीकरण लगभग सही है। लेकिन अपने आप में ये कथन भ्रामक हो सकता है।

मार्क्स-एंगेल्स के लेखन से मदद लेते हुए, लेनिन दर्शाते हैं कि वित्तीय पूँजी के दौर में पूँजी के स्वामित्व और प्रबंधन के विभाजन के साथ, पूँजीपति वर्ग पूँजी के स्वामी के रूप में पूरी तरह से अनावश्यक हो चुका है और अपने वित्तीय सट्टेबाज क्रियाकलापों से लगान वसूल करके रहता है। उनका मुनाफा ("प्रमोटर का मुनाफ़ा"), उद्यमशीलता के मुनाफे के बजाय लगान या ब्याज के समान है। हिल्फ़र्डिंग ने भी इतनी बात कही थी, लेकिन लेनिन इससे कुछ महत्त्वपूर्ण सबक लेते हैं। लेनिन के लिए, इस कूपन-क्लिपर (coupon-clipper, ऐसा व्यक्ति जिसके पास बड़ी संख्या में सूदखोर बांड आदि (bond) हों) वर्ग का उदय, जो कूपन काट कर जीता था, साम्राज्यवादी अवस्था में पूँजीवाद के परजीवी और सड़ते हुए चरित्र के लक्षणों में से था। इस सड़ते हुए परजीवी प्रकृति की दूसरी अभिव्यक्तियाँ थीं: इज़ारेदारियों के द्वारा उत्पादक शक्तियों के और ज्यादा विकास, और ज्यादा खोजों और आविष्कारों की राह में बाधाएँ पैदा करना। पर लेनिन के अनुसार इसका ये मतलब नहीं था कि इज़ारेदारी की अवस्था में तकनीकी प्रगति में स्थाई रूप से ठहराव आ जाता है। वो इस बात को लेकर सजग थे कि इज़ारेदारी की अवस्था में प्रतिस्पर्धा मौजूद होने के कारण, तेज प्रगति के दौर भी आएँगे। हालाँकि, यह मुख्य रुझान नहीं रहेगा। लेनिन कहते हैं:

> "जैसे-जैसे इज़ारेदारी की कीमतों में ठहराव आने लगता है, चाहे ऐसा अस्थायी रूप से ही हो, तो तकनीकी और फलस्वरूप हर किस्म की प्रगति में भी ख़त्म होने का रुझान दिखने लगता है, और उस हद तक जानबूझ कर तकनीकी प्रगति को बाधित करने की आर्थिक संभावना भी उभरती है...निश्चित रूप से तकनीकी सुधार करके उत्पादन की लागत कम करने और मुनाफा बढ़ाने की संभावना से बदलाव की दिशा में एक प्रभाव है। फिर भी, ठहरावग्रस्त और पतित होने का रुझान, जोकि इज़ारेदारी का लक्षण है, जारी रहता है, और उद्योग की कुछ निश्चित शाखाओं में, कुछ निश्चित अवधि के लिए, ये प्रभावी बन जाता है।" (*Ibid,* p. 94) (अनुवाद हमारा)

लेकिन वो ये भी कहते हैं,

> "यह विश्वास करना गलती होगी कि पतन के इस रुझान से पूँजीवाद के तेजी से विकास की संभावना ख़त्म हो जाती है।" (*Ibid,* p. 112) (अनुवाद हमारा)

वित्त पूँजी की परिभाषा के बारे में, लेनिन हिल्फ़र्डिंग द्वारा दी गई परिभाषा को स्वीकार करते हैं, कि वित्त पूँजी बैंकों के स्वामित्व वाली पूँजी है, लेकिन उद्योग द्वारा प्रयोग की जाती है। लेनिन के अनुसार, हिल्फ़र्डिंग की परिभाषा में एक पहलू छूट गया है, वो है कि ऐसी परिस्थिति पूँजी के सांद्रण और केंद्रीकरण के विकास के एक निश्चित मुकाम पर ही पैदा होती है जिसके फलस्वरूप इज़ारेदारी की अवस्था आती है, यद्यपि हिल्फ़र्डिंग ने बाकी जगहों पर इस सवाल पर भी ध्यान दिया है। हालांकि, लेनिन के अनुसार, विकास का व्यापक क्रम स्पष्ट होना चाहिए। इसीलिए वो कहते हैं:

> "अब हमें यह बताना होगा कि, माल उत्पादन और निजी संपत्ति की सामान्य परिस्थितियों में, पूँजीवादी इज़ारेदारियों के "व्यापारिक संचालन" अनिवार्य रूप से एक वित्तीय कुलीनतंत्र के वर्चस्व का कारण बनते हैं।" (*ibid,* p. 46) (अनुवाद हमारा)

लेनिन दर्शाते हैं कि कैसे होल्डिंग सिस्टम (holding system) के तहत वित्तीय कुलीनतंत्र बनते हैं। होल्डिंग सिस्टम के तहत, कुछ मिलियन पाउंड के शेयर रखने वाला व्यक्ति सैकड़ों मिलियन पाउंड पर नियंत्रण कर सकता है। इसमें कम मूल्य वाले शेयर ज्यादा लाभदायक होते हैं। लेनिन दर्शाते हैं कि कैसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद 1 पाउंड के शेयर पर आधारित था। लेनिन विस्तार से बताते हैं कि कैसे होल्डिंग सिस्टम काम करता है। लेनिन दिखाते हैं कि कैसे वित्तीय पूँजी का बड़ा हिस्सा सट्टेबाजी से, शेयर खरीद कर, उनकी कीमतें बढ़ाकर और "प्रमोटर के मुनाफ़े" के रूप में अत्यधिक पैसे कमाकर आता है। वित्तीय कुलीनतंत्र का मुख्य स्रोत है विदेशी लोन लेना और सेक्योरिटी जारी करना। संकटों के समय में "पुनर्संगठन और पुनर्निर्माण" के नाम पर ये कुलीनतंत्र संकट में फंसी कंपनियों के शेयर खरीदकर, उनका नियंत्रण अपने हाथ में लेकर और उनके शेयर की कीमत बढ़ाकर खूब मुनाफा कमाते हैं।

एक सटीक पूर्वानुमान वाले अनुच्छेद में लेनिन दर्शाते हैं कि कैसे अचल संपत्ति में सट्टेबाजी से वित्तीय पूँजी भारी मुनाफ़ा कमाती है। इस हिस्से को पढ़ने पर इसकी समकालीनता आपको तुरंत प्रभावित करती है। लेनिन तर्क करते हैं:

> "तेजी से बढ़ते बड़े कस्बों की उपबस्तियों वाले इलाके में स्थित भूमि की सट्टेबाजी वित्त पूँजी के लिए एक विशेष रूप से लाभदायक संचालन है। यहाँ बैंकों की इज़ारेदारी ज़मीन के लगन की इज़ारेदारी और संचार के साधनों की इज़ारेदारी के साथ विलीन हो जाती है, क्योंकि ज़मीन की कीमत में बढ़ोत्तरी और एक साथ बड़ी मात्रा में बेचने पर लाभप्रदता की संभावना इत्यादि कस्बे के केंद्र में संचार के बेहतर साधनों पर निर्भर हैं; और ये संचार के साधन बड़ी कंपनियों के हाथों में हैं जोकि इन बैंकों के साथ होल्डिंग सिस्टम और बोर्ड में सीटों के बँटवारे के तहत जुड़े हैं।" (*ibid,* p. 54-55) (अनुवाद हमारा)

लेनिन का तर्क है कि एक बार इज़ारेदारियों का गठन हो जाने पर वे आर्थिक जीवन के हर क्षेत्र में प्रवेश करते हैं और जल्द ही इसे नियंत्रित करना शुरू कर देते हैं। छोटी पूँजी की विख्यात स्वतंत्रता और मुक्त प्रतिस्पर्धा के "न्यायसंगत" होने का मिथक हास्यास्पद हो जाता है, जोकि कभी न्यायसंगत था ही नहीं बल्कि जिसकी कपटता कई छोटी पूँजी के भीड़ के पीछे छुपी थी। वित्तीय कुलीनतंत्र राज्य अधिकारियों, नौकरशाहों, राजनीतिक एजेंटों और दलालों (इस खंड को पढ़ते हुए जो अचानक मुझे अमर सिंह और नीरा राडिया जैसे लोगों की याद दिलाते है) को अच्छा खासा घूस देते हैं, जो औद्योगिक इज़ारेदारियों और बैंकिंग इज़ारेदारियों के साथ उन कुलीनतंत्रों के बोर्ड में होते हैं। इस तरीके से, वित्तीय कुलीनतंत्र राज्य के साथ संपर्क स्थापित करते हैं और इसके नीति-निर्धारण को भी प्रभावित करना शुरू कर देते हैं। लेनिन का मानना है कि बैंकों की शक्ति का स्रोत बैंकों और क्रेडिट संस्थानों के नियंत्रण में भारी मात्रा में मुद्रा-पूँजी एकत्र करने के पूँजीवाद के सामान्य रुझान में है। बढ़ते हुए पूँजीवादी विकास के साथ इसकी महत्ता काफ़ी बढ़ जाती है। इस पूरी प्रक्रिया से बैंकों के द्वारा उद्योग पर प्रभुत्व

स्थापित कर लिया जाता है और उनके एकीकरण के फलस्वरूप वित्तीय पूँजी का उदय होता है। पूँजी का आधिक्य जिसे लाभप्रद ढंग से मूल देश में निवेश नहीं किया जा सकता, उसका निर्यात कर दिया जाता है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि कई बाद के मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्रियों ने दावा किया है कि लेनिन हमेशा संकट के मुख्य कारण के रूप में लाभप्रदता के संकट से अधिक विभागों के बीच असमानुपातिकता पर जोर देते हैं। हालाँकि, यदि *साम्राज्यवाद: पूँजीवाद की चरम अवस्था* को पढ़ा जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि लेनिन ने पूँजी निर्यात के मुख्य कारण के रूप में लाभप्रदता के क्रियाकलापों को चिह्नित किया है। लेनिन अक्सर पूँजी की अधिकता या प्रचुरता का संदर्भ देते हैं। मार्क्स ने पहले ही साबित किया था कि पूँजी का कोई भी आधिक्य ऐसा आधिक्य है जिसका लाभप्रद ढंग से निवेश नहीं किया जा सकता। आधिक्य अपने आप में कोई निश्चित राशि नहीं है, बल्कि एक ऐसी अवधारणा है जो केवल लाभ दर से जोड़ कर ही समझी जा सकती है। लेनिन तर्क करते हैं कि इज़ारेदारी की अभिव्यक्ति निश्चित देशों की इज़ारेदारी की स्थिति में उनके पास पूँजी के "आधिक्य" (जिसका घरेलू बाज़ार में निवेश संभव नहीं है) के रूप में भी होती है। लेनिन ने "साम्राज्यवाद की नीति" के बिना इस "आधिक्य" से छुटकारा पाने के लिए सुझाए गए पेटी-बुर्जुआ उपायों का उपहास किया था। इस पेटी-बुर्जुआ नीमहकीमी इलाज की लेनिन के द्वारा आलोचना पढ़के सहसा ही आपको प्रभात पटनायक और सी.पी. चंद्रशेखर और जयति घोष जैसे लोगों की याद आ जाती है जो इस व्यवस्था को मनाने में लगे रहते हैं कि उसे संकट से छुटकारा पाने के लिए घरेलू मांग को अनिवार्य रूप से बढ़ाना चाहिए। लेनिन इस नीमहकीमी इलाज का तिरस्कार करते हैं और याद दिलाते हैं कि पूँजीवाद ऐसा करके पूँजीवाद रहेगा ही नहीं, क्योंकि ऐसे तरीकों से मजदूरी बढ़ जाती और मुनाफ़ा घट जाता है जबकि पूँजीवादी उत्पादन और निवेश का नियामक लाभप्रदता है। इस "आधिक्य" के लिए उन पिछड़े देशों में निवेश के अवसर होते हैं जहाँ पूँजी का आवयविक संघटन निम्न है, ज़मीन की कीमतें कम हैं, श्रम शक्ति सस्ती है और सस्ता कच्चा माल उपलब्ध है। इसके अलावा, पूँजी निर्यात पूँजीवादी इज़ारेदारियों को सुरक्षात्मक टैरिफ को दरकिनार करने में सक्षम करता है।

लेनिन पूँजी के निर्यात में अभूतपूर्व वृद्धि को डेटा के माध्यम से दर्शाते हैं। यहाँ हमें एक बात याद रखनी होगी। लेनिन के काल के साथ-साथ आज भी, उन्नत देशों के बीच पूँजी का प्रवाह और बहिर्वाह सर्वाधिक है। कई विद्वानों ने इस तथ्य का इस्तेमाल साम्राज्यवाद के चरण में पूँजी के निर्यात को महत्वपूर्ण निशाननवीस के रूप में खारिज करने के लिए किया है। हालाँकि वे एक बुनियादी बिंदु को भूल जाते हैं। आज भी अमेरिका में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के अंतर्वाह का सबसे बड़ा हिस्सा यूरोपीय संघ से आता है और अमेरिका के द्वारा किए जाने वाले कुल प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का सबसे बड़ा हिस्सा यूरोपीय संघ में जाता है। हालांकि, अगर हमें पूँजी आयात और निर्यात से संबंधित आंकड़ों को समझना है, तो हमें अनिवार्यतः समझना होगा कि विकसित पूँजीवादी देशों के बीच पूँजी का आयात और निर्यात साम्राज्यवादी शोषण का तत्व नहीं है बल्कि उनका संबंध व्यापक समता का है। दूसरे, हमें प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) के प्रवाह / बहिर्वाह के साथ-साथ प्रत्यक्ष विदेशी निवेश स्टॉक (FDI stocks) में विकासशील और विकसित दुनिया की हिस्सेदारी के बारे में आंकड़े देखना चाहिए। तीसरा, किसी भी दो देशों की तुलना निरर्थक है, क्योंकि इस तरह का विश्लेषण पूरी तरह से सापेक्षतावादी होगा; किसी भी जोड़े के विश्लेषण में, एक साम्राज्यवादी शोषक के रूप में उभरेगा और दूसरा शोषित के रूप में; हम अमेरिका और यूरोपीय संघ के बीच पूँजी प्रवाह का विश्लेषण करें, तो भी ऐसा ही निष्कर्ष निकलेगा। विश्लेषण विकसित और विकासशील देशों के बीच पूँजी के प्रवाह पर और पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में पूँजी निर्यात के बढ़ते रुझान पर केंद्रित होना चाहिए; एक शुद्ध आयातक होने से या *अपने आप में* पूँजी के शुद्ध निर्यातक भर होने से कुछ नहीं साबित होता। उदाहरण के लिए, अमेरिका पूँजी का शुद्ध आयातक है; तो क्या हम अमेरिका को साम्राज्यवाद द्वारा शोषित राष्ट्र कह सकते हैं? वास्तविक मानदंड है पूँजी निर्यात के द्वारा आज पिछड़े पूँजीवादी देशों से अधिशेष विनियोजन में उसकी भूमिका और विकसित देशों के साम्राज्यवादी प्रभुत्व को बरक़रार रखने में इस विनियोजन की भूमिका। चीन का मामला दिलचस्प है। यहां हम देख सकते हैं कि पिछले 30 वर्षों में पूँजी का शुद्ध निर्यात अविश्वसनीय रूप से बढ़ा है। इस निर्यात का एक बड़ा हिस्सा अफ्रीका जा रहा है, लेकिन विकसित देशों में भी जा रहा है। यह अनुसंधान का एक दिलचस्प मुद्दा है कि क्या चीन साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में उभर रहा है, या यह पहले से ही एक साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में उभर चुका है? हम यहां इस प्रश्न के विस्तार में नहीं जा सकते हैं। हालांकि, इतना तय है कि कई विद्वानों ने लेनिन की पूँजी निर्यात के मानदंड को काफी गलत समझा है, जिनमें से कुछ मार्क्सवादी भी हैं। ये जानना ज़रूरी है कि लेनिन के सिद्धांत के

तहत, कुछ विशेष क्षेत्रों, संसाधनों और बाजारों पर प्रभाव/नियंत्रण उन्नत देशों के द्वारा अधिशेष विनियोजन में और अन्य उन्नत देशों के साथ उनकी प्रतिस्पर्धा में भी महती भूमिका निभाता है। इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता है कि यूरोपीय संघ के पूँजी निर्यात का बड़ा हिस्सा अमेरिका या दुनिया के अन्य विकसित हिस्सों को जाता है। मिस्र, लीबिया, भारत, इंडोनेशिया, दक्षिण अफ्रीका, तुर्की आदि जैसे देशों के बरक्स यूरोपीय संघ अब भी एक साम्राज्यवादी शक्ति है।

लेनिन के द्वारा उपनिवेशों, अर्द्ध-उपनिवेशों, नव-उपनिवेशों पर पूँजी के निर्यात के प्रभाव का आकलन थोड़ा त्रुटिपूर्ण तो जान पड़ता है। लेनिन के मुताबिक, पूँजी निर्यात से प्रेषक क्षेत्रों (sending areas) में पूँजीवादी विकास कम होगा और पूँजी प्राप्त करने वाले क्षेत्रों में पूँजीवादी विकास तेज होगा, यद्यपि वे राज्य लोन, निर्माण परियोजनाओं आदि के माध्यम से उन्नत देशों में मुनाफ़े को स्थानांतरित करके वित्तीय इज़ारेदारों को भारी मुनाफ़ा पहुँचाते हैं। इतिहास के वास्तविक अनुभव से पता चलता है कि पिछड़े क्षेत्रों में साम्राज्यवादी प्रवेश पूँजीवादी विकास की कुछ पूर्व शर्तों को तैयार तो करते हैं, लेकिन वे उपनिवेशों, अर्द्ध-उपनिवेशों और नव-उपनिवेशों में पूँजीवादी विकास के प्राकृतिक मार्ग को बाधित और अवरुद्ध करते हैं। हालांकि, अगर हम विऔपनिवेशीकरण (decolonization) के बाद की अवधि को देखें, तो लेनिन के इस आकलन में आंशिक सच्चाई तो है। पूँजी के निर्यात और फलस्वरूप लेनिन के शब्दों में "arterial उद्योगों" के विकासशील दुनिया में स्थानांतरण से विकसित दुनिया में पूँजीवादी विकास में कमी आई है, जबकि विकासशील दुनिया में पूँजीवादी विकास बढ़ा है, यद्यपि यह बढ़ोत्तरी भारी विषमता, असमानता, अधूरे बुर्जुआ लोकतंत्र के साथ हुई है। पिछले 5 या 6 दशकों में भूतपूर्व उपनिवेशों में जो विशेष प्रकार का उत्तर-औपनिवेशिक और सापेक्षतः पिछड़े किस्म का पूँजीवादी विकास हुआ है, ये उसी की अभिलाक्षाणिक विशेषताएँ हैं।

लेनिन के अनुसार, इज़ारेदारियों के द्वारा पूँजी निर्यात के माध्यम से विशालतम संभावित क्षेत्रों के शोषण के लिए प्रतिस्पर्धा से दुनिया का *लाक्षणिक* (अग्रणी विश्व शक्तियों के बीच) और *वास्तविक* (पूँजीवादी इज़ारेदारी संघों के बीच) रूप से विभाजन होता है। विश्व के इस 'लाक्षणिक' और 'वास्तविक' विभाजन के बीच अंतर समझना बेहद ज़रूरी है क्योंकि इसे ठीक से नहीं समझ पाने के कारण ही बहुत से 'नव साम्राज्यवाद' के सिद्धान्तकार अजीब निष्कर्षों पर पहुँच गये हैं। लेनिन विद्युत् उद्योग, तेल उत्पादन इत्यादि जैसे कई प्रकार के उद्योगों के बारे में डेटा के प्रयोग से साबित करते हैं कि कैसे लेनिन के समय में दुनिया पूँजीवादी इज़ारेदारी समूहों में विभाजित थी। पूँजीवादी इज़ारेदारी समूहों के बीच के समझौतों और संघर्षों का लेनिन द्वारा विस्तार में वर्णन किया गया है कि विकास के अलग-अलग प्रक्षेपकों (trajectories) के कारण, संघर्ष समझौते में बदल जाता है और नए प्रतिद्वंद्विता को जन्म देने के लिए समझौतों को तोड़ दिया जाता है। इस द्वंद्वात्मक क्रियाकलाप की जड़ है असमान विकास का नियम। इस क्रियाकलाप में, उन्नत पूँजीवादी देशों की स्थिति इज़ारेदार पूँजी के एक उपकरण के रूप में उभरती है। लेनिन विशेष रूप से काउत्स्की और अन्य सामाजिक-जनवादियों के तर्क को खारिज कर देते हैं कि इज़ारेदारी प्रतियोगिता के उन्मूलन की ओर ले जाती है। लेनिन लिखते हैं:

> "अंतरराष्ट्रीय कार्टेलों से पता चलता है कि किस हद तक पूँजीवादी इज़रेदारियाँ विकसित हो चुकी हैं, और किस हद तक विभिन्न पूँजीवादी संघों के बीच संघर्ष का उद्देश्य विकसित हो चुका है...क्योंकि बदलते हुए, सापेक्षिक रूप से विशिष्ट और अस्थाई कारणों के चलते संघर्ष के *रूपों* के बदलने की संभावना होती है और वो लगातार बदलते भी हैं, मगर संघर्ष का सार, उसकी वर्ग की *धारणा का मूल तत्त्व*, सकारात्मक रूप से तब *नहीं बदल सकता है*, जब तक वर्गों का अस्तित्व है।" (*ibid,* p. 71) (अनुवाद हमारा)

जाहिर है, लेनिन का तर्क है कि इज़ारेदारी प्रतिस्पर्धा को समाप्त नहीं करती है, बल्कि केवल प्रतिस्पर्धा के रूप, उसकी प्रकृति और अभिव्यंजना को बदलती है। उनके अनुसार, दुनिया का विभाजन विभिन्न इज़ारेदारियों और राज्यों की पूँजी में हिस्सेदारी पर आधारित है। इस हिस्से में विभिन्न कारकों के कारण निरंतर परिवर्तन होता रहता है। जब कभी भी यह बदलता है, टकराव होते हैं। राज्यों के राजनीतिक गठबंधनों के बीच दुनिया का *लाक्षणिक* विभाजन केवल इज़ारेदार संघों के बीच दुनिया के *वास्तविक* विभाजन के आधार पर है। और दोनों ही परिवर्तनशील हैं। अभी दुनिया अपने लाक्षणिक और वास्तविक दोनों ही प्रकार के विभाजन में बड़े बदलाव की कगार पर है, हालांकि यह प्रक्रिया असमान, बाधित और हिंसक उथल-पुथल से भरी हो सकती है।

इस विषय से संबंधित है लेनिन का बुखारिन की विश्व अर्थव्यवस्था की अवधारणा से विचलन। बुखारिनन की रचना में, विश्व अर्थव्यवस्था की अवधारणा आंतरिक विभाजनों को नजरअंदाज करती है; यहां तक कि जब इन आंतरिक विभाजनों को माना भी जाता है तो वे विश्व अर्थव्यवस्था के सामान्य नियमों के मातहत होते हैं। नतीजतन, विश्व अर्थव्यवस्था की संपूर्ण अवधारणा थोड़ी एकाश्मी और समरूप बन जाती है। पर, लेनिन की अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की अवधारणा साम्राज्यवादी शक्तियों के बहुस्तरीय नेटवर्क की अवधारणा है। विश्व अर्थव्यवस्था की एकाश्मी अवधारणा के कारण, बुखारिन का झुकाव तथाकथित "Polish heresy" की ओर हुआ जो राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के अधिकार को ख़ारिज करता था। यह तर्क दिया गया था कि साम्राज्यवाद के दौर में राष्ट्रीय आत्मनिर्णय की अवधारणा पुरानी हो गई थी। ट्रॉट्स्की ने भी ऐसा ही तर्क किया था और बुखारिन पर उसके प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता। परिणामस्वरूप, बुखारिन ने तर्क दिया था कि इस युग में समाजवादी क्रांति होने के बाद एक वैश्विक या कम से कम एक बहुराष्ट्रीय समाजवादी राज्य की स्थापना होने की संभावना है, जो कि राष्ट्रीय आत्मनिर्णय की धारणा से असंगत है। लेनिन ने इस विचार पर जोरदार ढंग से हमला किया और इसे "साम्राज्यवादी अर्थवाद" का एक रूप बताया। उन्होंने राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से आत्मनिर्णय के अधिकार का समर्थन नहीं किया, बल्कि समाजवादी क्रांति के भविष्य के दृष्टिकोण से। इस आलोचना की जड़ में थी, लेनिन की साम्राज्यवाद की साम्राज्यवादी शक्तियों के बहुस्तरीय नेटवर्क के रूप में, एक प्रकार की श्रृंखला के रूप में पूरी तरह से अलग अवधारणा। लेनिन ने समझ लिया था कि इज़ारेदारियों के उदय, वित्तीय अल्पसंख्यकों के गठन, पूँजी का निर्यात और पूँजीवादी इज़ारेदारी संघों के बीच विश्व के विभाजन के निर्माण ने विभिन्न पूँजीवादी और गैर-पूँजीवादी सामाजिक संरचनाओं को एक साथ बांध दिया है; लेकिन साथ ही उन्होंने यह भी समझा कि यह एक जैविक एकता नहीं है जो एक एकाश्मी संरचना का निर्माण करती है बल्कि एक ऐसी संरचना है जो एक बहु-स्तरीय नेटवर्क के समान होती है जो आंतरिक रूप से विरोधाभासी, तरल और गतिशील है। ये विभिन्न सामाजिक संरचनाएं (उन्नत पूँजीवादी, अपेक्षाकृत पिछड़े पूँजीवादी, साथ ही साथ औपनिवेशिक, अर्ध-औपनिवेशिक और नव-औपनिवेशिक) साम्राज्यवाद की एक श्रृंखला में कड़ियों की तरह हैं। विशेष रूप से सामाजिक-आर्थिक संबंधों, उनके विशेष राजनीतिक संक्षेपण और उनके विशेष राजनीतिक संयोजन के अस्तित्व के कारण प्रत्येक कड़ी की अपनी गतिकी और वृद्धि दर है। इसके साथ ही लेनिन ने अपने 'कमजोर कड़ियों (weak links)' के प्रसिद्ध सिद्धांत का प्रतिपादन भी किया जिसमें तर्क दिया गया कि आगामी क्रांतियों की संभावना 'कमजोर कड़ियों' में होगी और उनके सिद्धांत को ऐतिहासिक अनुभवों द्वारा सत्यापित भी किया गया। इसका कारण यह था कि उन्होंने साम्राज्यवादी व्यवस्था को एकाश्मी और समरूप विश्व अर्थव्यवस्था की बजाय एक बहु-स्तरीय नेटवर्क के रूप में देखा। एकाश्मी और समरूप विश्व अर्थव्यवस्था की अवधारणा उस काल के कई मार्क्सवादी विद्वानों पर हावी रही और यह काउत्स्की के सामाजिक-जनवादी या ट्रॉट्स्कीपंथी स्थायी क्रांति के सिद्धांत के लिए एक आसान रास्ता था।

दुनिया के क्षेत्रीय विभाजन पर चर्चा करते हुए लेनिन कई मूल्यवान टिप्पणियाँ करते हैं। वो साम्राज्यवादी शक्तियों की तीन श्रेणियों के बारे में बात करते हैं। वर्तमान साम्राज्यवादी दुनिया के बदलते परिदृश्य का भी विश्लेषण करने के लिए ये श्रेणियां उपयोगी हैं। पहली श्रेणी नई और तेज़ी से उभरती साम्राज्यवादी शक्तियों (लेनिन के समय में अमेरिका, जर्मनी और जापान) से संबंधित है; दूसरी श्रेणी पुरानी साम्राज्यवादी शक्तियों की है (लेनिन के समय में ब्रिटेन और फ्रांस), और तीसरी श्रेणी रूस जैसे देशों से संबंधित है जो अभी भी अन्य साम्राज्यवादी देशों की तुलना में पिछड़े हैं, लेकिन जिनमें वित्तीय पूँजी और औद्योगिक पूँजीवाद के सर्वाधिक उन्नत और सांद्रित रूपों का संयोजन है जोकि पिछड़े संबंधों के साथ सह-अस्तित्व में है। कोई इस बात पर असहमत हो सकता है कि कौन से देश किस श्रेणी से संबंधित हैं, लेकिन इस बात पर आम सहमति होगी कि ये श्रेणियाँ अभी भी प्रासंगिक हैं और वर्तमान साम्राज्यवाद पर लागू होती हैं।

लेनिन का एक और महत्वपूर्ण और प्रासंगिक अवलोकन यह है कि उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद की शर्त नहीं है। साम्राज्यवाद उपनिवेशवाद, अर्द्ध-उपनिवेशवाद, नव-उपनिवेशवाद के बिना अस्तित्व में हो सकता है और है। उनका तर्क है कि वित्तीय पूँजी पूर्ण आज़ादी वाले राज्यों को मातहत कर सकती है और करती भी है। लेनिन आगे तर्क करते हैं कि उपनिवेश, अर्द्ध-उपनिवेश और नव-उपनिवेश के अलावा, वित्त पूँजी के वर्चस्व और उस पर निर्भरता के कई रूप हो सकते हैं। इनमें से एक रूप वाणिज्यिक उपनिवेश है जो राजनीतिक रूप से स्वतंत्र होता है। अर्जेंटीना, लेनिन के लिए, इस तरह के एक वाणिज्यिक उपनिवेश का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण था। लेनिन वित्तीय पूँजी के प्रभुत्व के एक और रूप की चर्चा करते हैं जो समकालीन दुनिया में भी खासतौर पर महत्त्वपूर्ण है। उनका तर्क है कि साम्राज्यवाद द्वारा छोटे और अपेक्षाकृत

कम विकसित पूँजीवादी राज्यों का भी फायदा उठाया जाता है। लेनिन ने पुर्तगाल को ऐसे राष्ट्र के उदाहरण के रूप में गिनाया है। यह पूरी तरह से राजनीतिक रूप से स्वतंत्र पूँजीवादी राज्य है और यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ संबद्ध है। ब्रितानी साम्राज्यवाद के एक 'कनिष्ठ साझेदार' के रूप में यह भूमिका इस तथ्य से स्पष्ट है कि पुर्तगाल ने ब्रिटेन को अपने उपनिवेशों में निवेश करने, टेलीग्राफ केबलों के नेटवर्क का उपयोग करने इत्यादि की अनुमति दी है। लेनिन के अनुसार ऐसे देश न तो उपनिवेश हैं न ही अर्द्ध-उपनिवेश और न ही नव-उपनिवेश। वे इस या उस साम्राज्यवादी गुट के साथ गठबंधन में हैं और अधीनस्थ साझेदार की भूमिका निभाते हैं। आइए देखें कि लेनिन ने इस संबंध में क्या कहा है:

> "राजकोषीय स्वतंत्रता के साथ वित्तीय और कूटनीतिक निर्भरता का कुछ अलग रूप, पुर्तगाल द्वारा प्रस्तुत किया गया है। पुर्तगाल एक स्वतंत्र संप्रभु राज्य है, लेकिन वास्तव में, दो सौ से अधिक वर्षों तक...यह एक ब्रिटिश संरक्षित राज्य (British protectorate) रहा है। ग्रेट ब्रिटेन ने अपने प्रतिद्वंद्वियों, स्पेन और फ्रांस के खिलाफ लड़ाई में अपनी अवस्थिति को मजबूत बनाने के लिए पुर्तगाल और उसके उपनिवेशों की रक्षा की है। बदले में, ग्रेट ब्रिटेन को वाणिज्यिक विशेषाधिकार प्राप्त हुए हैं, पुर्तगाल और पुर्तगाली उपनिवेशों में सामानों और ख़ासकर पूँजी के आयात के लिए तरजीही परिस्थितियाँ मिली हैं, इसके बंदरगाहों और द्वीपों का प्रयोग करने का अधिकार मिला है, और इसके तार केबल आदि का उपयोग करने का अधिकार मिला है। इस प्रकार के संबंध हमेशा बड़े और छोटे राज्यों के बीच अस्तित्व में रहे हैं, लेकिन पूँजीवादी साम्राज्यवाद के युग में वे एक सामान्य प्रणाली बन जाते हैं, वे "दुनिया को बांटो" संबंधों के कुल योग का हिस्सा बन जाते हैं और विश्व वित्तीय पूँजी के संचालन की शृंखला में कड़ी बन जाते हैं।" (*ibid*, p.81-82) (अनुवाद हमारा)

वर्तमान विश्व में, स्थिति कुछ हद तक बदल गई है। अब ऐसे राज्य जो अपेक्षाकृत कम विकसित होते हैं, वे एक साम्राज्यवादी शक्ति के साथ लंबे समय तक संबद्ध नहीं होते हैं, लेकिन वे सामान्य रूप से साम्राज्यवाद के 'कनिष्ठ साझेदारों' की भूमिका निभाते हैं, कभी किसी एक अक्ष की तरफ़ झुकते हैं, तो कभी किसी दूसरे अक्ष की तरफ़। एक बात उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि उपनिवेशवाद, अर्ध-उपनिवेशवाद और नव-उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद की एकमात्र संभव जीवन-प्रणाली नहीं हैं। साम्राज्यवाद उपनिवेशवाद, अर्द्ध-उपनिवेशवाद और नव-उपनिवेशवाद के बिना अस्तित्व में हो सकता है। कुछ अपवादों को छोड़कर, आज यही स्थिति है। जाहिर है, लेनिन ने इस मामले पर अधिक विस्तार से चर्चा नहीं की और न ही कर सकते थे क्योंकि वह एक क्रांतिकारी अध्यवसायी थे और यह उनका कर्तव्य था कि वह अपने समय के सबसे जीवंत प्रश्नों का और सबसे अधिक प्रातिनिधिक वास्तविकताओं का विश्लेषण करें।

इसी तरह, लेनिन यह नहीं मानते थे कि औद्योगिक और कृषि क्षेत्र के बीच दुनिया का विभाजन साम्राज्यवाद की पूर्व शर्त है, जैसा कि काउत्स्की ने सुझाव दिया था। लेनिन ने साम्राज्यवाद और वित्त पूँजी के बीच संबंधों की विशिष्टता को न समझने और उन्नत औद्योगिक देशों के साथ साम्राज्यवाद को जोड़ने के लिए काउत्स्की की भी आलोचना की। यह खंडन प्रभात और उत्सा पटनायक द्वारा साम्राज्यवाद के बारे में हालिया सिद्धांतों पर भी काफ़ी हद तक लागू होता है। लेनिन बताते हैं कि साम्राज्यवादी वर्चस्व का अपने आप में कृषि क्षेत्र या पटनायक बंधुओं के शब्दों में उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों (जिनके सस्ते माल समशीतोष्ण देशों में पूँजीवाद के विकास के लिए जरूरी हैं) से कोई लेना देना नहीं है और वो ये भी कहते हैं कि साम्राज्यवादी देश उच्च रूप से विकसित औद्योगिक क्षेत्रों पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए भी आपस में प्रतिस्पर्धा करते हैं क्योंकि दुनिया का पहले से ही बँटवारा हो चुका है और फिर से बँटवारे के लिए संघर्ष में स्वाभाविक ही सभी प्रकार के क्षेत्र आ जाते हैं और दूसरे, इसमें प्रतिद्वंद्वियों को कमज़ोर करने के किए पूरी दुनिया पर प्रभुत्व स्थापित करने का संघर्ष भी शामिल होता है, इसलिए साम्राज्यवादियों के लिए कृषि या औद्योगिक क्षेत्रों में प्राथमिकता तय करने जैसी कवायद महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाती।

लेनिन ने काउत्स्की के इस दावे को भी खारिज कर दिया कि 'अति-साम्राज्यवाद' का एक चरण आ सकता है। लेनिन इसे अति-बकवास का सिद्धांत कहते हैं। लेनिन का तर्क है कि यह सैद्धांतिक रूप से भी असंभव है। काउत्स्की ने तर्क दिया कि विदेश नीति में कार्टेलीकरण के विकास की संभावना भी मौजूद है, जिससे विश्व इज़ारेदारी का उद्भव हो सकता है, यानि 'अति-साम्राज्यवाद' के युग का उद्घाटन करने वाला एक एकल अंतर्राष्ट्रीय ट्रस्ट। उसने इसे कई साम्राज्यवादों के एक साम्राज्यवाद में संयोजन के रूप में पारिभाषित किया है जोकि अंतरराष्ट्रीय रूप से संघटित वित्तीय पूँजी की मदद से पूरी दुनिया का संयुक्त रूप से शोषण करते हैं। लेनिन ने इस पूरे तर्क को अति-बकवास के रूप में

धराशायी कर दिया। 'अति-साम्राज्यवाद' का विचार ही अर्थहीन "शुद्ध अमूर्तन" है। लेनिन का तर्क है कि यदि हम एक ऐतिहासिक रूप से निर्धारित ठोस परिस्थिति में वित्त पूँजी के युग में इज़ारेदारी के विकास का विश्लेषण करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि पूँजीवाद के विषम विकास, असमानताओं और वृद्धि की विभिन्न दरों को देखते हुए अति-साम्राज्यवाद का ऐसा चरण कभी नहीं आएगा। हमेशा कई साम्राज्यवादों का अस्तित्व होगा, भले ही अलग-अलग समय में अलग-अलग साम्राज्यवाद का प्रभुत्व हो। यह आलोचना उन सिद्धांतों पर लागू होती है जो सोवियत संघ के पतन के बाद उभरी जब कुछ "मार्क्सवादियों" ने "एकध्रुवीय संसार" और "पैक्स अमेरिकाना (Pax Americana)" के बारे में बात करना शुरू किया, उदाहरण के लिए प्रभात पटनायक और ऐजाज़ अहमद। इस समझ के कारण, काउत्स्की और अन्य सामाजिक-जनवादी नेताओं के अवसरवाद की लेनिन की आलोचना बुखारिन की आलोचना की तुलना में बहुत अधिक पूर्ण, सुसंगत और प्रभावी थी, जबकि बुखारिन के द्वारा की गई आलोचना में कृत्रिमता थी जो उनके इस विश्वास के चलते थी कि प्रतिस्पर्धा राष्ट्रीय पूँजीवाद के भीतर समाप्त हो जाएगी। उसी तर्क ने उन्हें काउत्स्की और बाद में हिल्फ़र्डिंग का खंडन करने में निशस्त्र कर दिया। लेनिन का, साम्राज्यवादी शासक वर्ग के द्वारा उन्नत देशों में मजदूर वर्ग के नेताओं और ऊपरी संस्तर के एक बड़े अल्पसंख्यक हिस्से को घूस देने के कारण अवसरवाद के उभार और साम्राज्यवाद के बीच की कड़ी, का विश्लेषण बुखारिन के विश्लेषण से काफ़ी बेहतर है।

ऐतिहासिक अवलोकनों और विकास के प्रक्षेपकों के आकलन में ये छोटी सी पुस्तिका इतनी समृद्ध है कि इसकी संपूर्ण अंतर्दृष्टि यहाँ प्रस्तुत नहीं की जा सकती, लेकिन इस तथ्य का उल्लेख करना ज़रूरी होगा कि उत्पादन के उत्तर-पश्चिमी पूँजीवादी देशों से उन क्षेत्रों में स्थानांतरित होना जिसे 'वैश्विक दक्षिण' की संज्ञा दी गई है, जिसे साम्राज्यवाद के कई अग्रणी अध्ययनों में दर्ज किया गया है (जैसे कि जॉन स्मिथ के अध्ययन में), लेनिन ने उसकी पहचान 100 साल पहले ही कर ली थी। लेनिन दिखाते हैं कि कैसे ब्रिटेन अपने ज्यादातर माल का उत्पादन खुद नहीं कर रहा है जिनका ये उपयोग करता है और इसके ज्यादातर arterial उद्योग इसके एशिया और अफ्रीका के उपनिवेशों में स्थानांतरित हो रहे हैं। ये आज अमेरिका पर विशेष रूप से लागू होता है। समकालीन ब्रिटेन का एक अन्य संबंधित अवलोकन जो आज अमेरिका में लागू होता है, यह है कि उस समय ब्रिटेन में अधिकांश भूमि उत्पादक प्रयोजनों के लिए नहीं बल्कि मनोरंजन और गैर-उत्पादक गतिविधियों के लिए इस्तेमाल की जा रही थी। ब्रिटेन के वित्तीय कुलीनतंत्र की परजीविता उसे धीमे मगर निरंतर ढलान की तरफ़ ले जा रही थी। फिर से, यही बात आज अमेरिका के बारे में भी कही जा सकती है।

पुस्तक के अंत में लेनिन ने साम्राज्यवाद की पेटी-बुर्जुआ समीक्षाओं, साम्राज्यवाद की सुधारवादी समीक्षाओं और साम्राज्यवाद की साम्राज्यवादी समीक्षाओं की एक शानदार आलोचना प्रस्तुत की है। हालांकि, हम लेनिन की इस आलोचना के विवरण नहीं दे सकते।

अंत में, 'सर्वोच्च' या 'नवीनतम' चरण की अवधारणा को समझना महत्वपूर्ण है। कुछ लेखकों ने यह साबित करने के लिए व्यर्थ की कोशिश की है कि लेनिन का मतलब 'सर्वोच्च स्तर' का नहीं था, बल्कि इसका अर्थ केवल पूँजीवाद के 'नवीनतम' या 'समकालीन चरण' से ही था। एक ऐसी बात का बचाव करने की ये बदहवास कोशिश जिसे बचाव की ज़रूरत है ही नहीं, उसका कारण है इस अवधारणा की प्रकृति को लेकर अत्यधिक भ्रम की स्थिति। इस अवधारणा की प्रकृति कालानुक्रमिक (chronological) होने के के बजाय तार्किक (logical) है। लेनिन के द्वारा साम्राज्यवाद को पूँजीवाद की चरम अवस्था और सर्वहारा क्रांति की पूर्व बेला कहा जाता है, इसका मतलब यह नहीं है कि क्रांति निकटस्थ है। इसका मतलब है कि साम्राज्यवाद उत्पादन के अभूतपूर्व समाजीकरण और बैंकों द्वारा पूरी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के बहीखाते के रूप में समाजवाद की आवश्यक पूर्वशर्तों का निर्माण करता है। इन भौतिक पूर्व-शर्तों का वास्तव में एक उच्चतर सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तित हो जाना एक स्वतःस्फूर्त आर्थिक कार्य नहीं है, बल्कि एक सचेतन राजनीतिक कार्य है और कई अन्य मुद्दों की तरह मजदूर वर्ग के आंदोलन में अवसरवाद और संशोधनवाद के ख़िलाफ़ पर संघर्ष पर निर्भर करता है। इस तरह, लेनिन किसी भी प्रकार के "अपरिहार्य पतन" या "अपरिहार्य रूप से टूटने" के सिद्धांत के खिलाफ हैं। साम्राज्यवाद चरम अवस्था है, इसका यह भी मतलब नहीं है कि साम्राज्यवाद के इतिहास को ही फ़ोर्डवाद से लेकर उत्तर-फ़ोर्डवाद और नवउदारवादी भूमंडलीकरण (जोकि मेरी राय में साम्राज्यवाद का नवीनतम चरण है) तक कई चरणों में विभाजित नहीं किया जा सकता। इसलिए 'चरम अवस्था' की राजनीतिक अवधारणा को एक कालानुक्रमिक अवधारणा के बजाय एक तार्किक अवधारणा के रूप में समझना आवश्यक है। आइए देखते हैं कि लेनिन का इसके बारे में क्या कहना है:

> "...तो यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे पास उत्पादन का सामाजीकरण है, और केवल "अन्तर्ग्रथन (interlocking)" नहीं है; कि निजी आर्थिक और संपत्ति संबंध ऐसे खोल का निर्माण करते हैं जो इनकी सामग्री भर नहीं पाता, एक ऐसा खोल जो अनिवार्य रूप से सड़ जाएगा अगर इसके निष्कासन को कृत्रिम रूप से लंबा खींचा जाएगा, ऐसा खोल जो एक लंबे समय तक सड़न की अवस्था में ही रहेगा (अगर, सबसे बुरी परिस्थिति में, इस अवसरवादी फोड़े के इलाज की अवधि दीर्घकालिक होती है), लेकिन जो अपरिहार्य रूप से हटा दिया जाएगा।" (*ibid,* p. 120) (अनुवाद हमारा)

इसलिए, जो लोग बेवजह 'चरम अवस्था' की अवधारणा को बचाना चाहते हैं, उन्हें शांति में रहना चाहिए। इसे दुरुस्त करने की कोशिश न करें, अगर इसमें कोई ख़राबी नहीं है!

साम्राज्यवाद के मार्क्सवादी सिद्धांत में लेनिन के योगदान को समझाते हुए, यह बिना किसी अतिशयोक्ति के कहा जा सकता है कि उनका सिद्धांत अभी भी साम्राज्यवाद का सबसे संपूर्ण सिद्धांत है जिसमें उच्च स्तर के सामान्यीकरण और द्वंद्वात्मक पद्धति का उत्कृष्ट उपयोग है। कई विषयों को अविकसित और अधूरा छोड़ दिया गया है और जिन पर आगे काम करने की ज़रुरत है। हालांकि, इस परियोजना का उद्देश्य बहुत ही विनम्र था, अर्थात् साम्राज्यवाद के 'आर्थिक सार' की 'एक सरल रूपरेखा' पेश करना। लेनिन ने न केवल साम्राज्यवाद के विश्लेषण में नई खोजें की बल्कि साम्राज्यवाद के बारे में उस समय तक किए गए मार्क्सवादी अध्ययनों के निष्कर्षों को भी व्यवस्थित किया। फलस्वरूप, लेनिन साम्राज्यवाद के अध्ययन के लिए सबसे पूर्ण प्रतिमान पेश करने में सफल रहे, जो आज भी प्रासंगिक है। इसका यह मतलब नहीं है कि लेनिन के साम्राज्यवाद के सिद्धांत को आज विकसित करने की आवश्यकता नहीं है। द्वितीय विश्व युद्ध के अंत के बाद से और विशेष तौर पर 1970 के दशक से फ़ोर्डवाद के ढलान, अविनियमन, असेंबली लाइन के विखंडन और पूर्णतः वैश्विक असेंबली लाइन के उदय, मजदूर वर्ग के लचीलाकरण और अदृश्यीकरण (flexibilization and invisibilization), अनौपचारीकरण की भिन्न प्रक्रिया, राष्ट्रपारीय कारपोरेशनों के रूप में नए प्रकार की इज़ारेदारियों के उदय, राष्ट्र-राज्यों की मौजूदगी और हस्तक्षेप की बदलती प्रकृति और वित्तीयकरण और सट्टेबाज पूँजी के अप्रत्याशित स्तर के कारण दुनिया का गहन कायापलट हुआ है। मेरी राय में ये बदलाव लेनिनवादी ढांचे से समझने और व्याख्या किए जाने के हिसाब से महत्वपूर्ण मात्रात्मक परिवर्तन हैं। हालाँकि ये भी निश्चित है कि इन बदलावों को संपूर्णता में, गति में, और इनके अंतरसंबंधों में समझने के लिए यानि कि द्वंद्वात्मक रूप से समझने के लिए, इसी ढाँचे में सर्वाधिक विश्लेष्णात्मक दृढ़ता और कुशाग्रता है।

1940 के दशक से 1970 के दशक के बीच के नव-मार्क्सवादी सिद्धान्त

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की अवधि में साम्राज्यवाद और इज़ारेदार पूँजीवाद के नए मार्क्सवादी अध्ययनों में उछाल देखने में आया। इस अवधि में सबसे महत्वपूर्ण रचना पॉल बरन की *The Political Economy of Growth* थी जो 1957 में अमेरिका में प्रकाशित हुई। दूसरी महत्वपूर्ण रचना पॉल स्वीज़ी और पॉल बरन की *Monopoly Capital* थी। परन्तु उनके राजनीतिक अर्थशास्त्र, जो 'मोनोपोली कैपिटल स्कूल' के नाम से जाना जाने लगा, की जड़ें 1942 में ही डाली जा चुकी थीं जब पॉल स्वीज़ी ने *The Theory of Capitalist Development* प्रकाशित की थी। आनुभविक रूप से समृद्ध और महत्वपूर्ण इन रचनाओं के प्रकाशन ने एक ऐसे परिप्रेक्ष्य की बुनियाद तैयार की जिसे मैं मोटे तौर पर 'विनिमय सम्बन्ध परिप्रेक्ष्य' *(यहाँ के बाद से* ***वि.स.प.****)* का नाम दूँगा। **वि.स.प.** की पाँच प्रमुख उपशाखाएँ हैं: पहली थी स्वीज़ी-बरन का 'मोनोपोली कैपिटल' स्कूल; दू*सरी* थी आन्द्रे गुंदर फ्रैंक की 'डिपेन्डेन्सी थियरी'; तीसरी थी इमैनुएल वालरस्टीन की 'वर्ल्ड सिस्टम थियरी'; चौथी थी सामिर अमीन की 'अंडरडेवलपमेंट' थियरी; और अन्तिम है अरगिरी एमैनुएल की 'अनईक्वल एक्सचेंज' थियरी। वि.स.प. की ये सभी उपशाखाएँ अपने विश्लेषण में विचारणीय रूप से भिन्न हैं, लेकिन उनमें राजनीतिक अर्थशास्त्र की कुछ बुनियादी अवस्थितियाँ साझा हैं। ये बुनियादी अवस्थितियाँ हैं: अल्पउपभोगवाद (अण्डरकन्ज़म्शनिज़्म), उत्पादन सम्बन्धों की बजाय विनिमय सम्बन्धों की प्रधानता और परिचलन तथा वितरण के क्षेत्र को विश्लेषणात्मक वरीयता देना।

वि.स.प. का विश्लेषण करने के लिए भी हमें शुरू से शुरुआत करनी चाहिए'। इस व्यापक चलन की जड़ें स्वीज़ी की *The Theory of Capitalist Development* के प्रकाशन में हैं। यह रचना लग्ज़ेम्बर्गवादी अल्पउपभोगवाद का ही एक विस्तार है जिसका विश्लेषण हम ऊपर कर चुके हैं। स्वीज़ी इसमें कोई संदेह नहीं छोड़ते हैं कि वे पूँजीवादी विकास और संकट का एक अल्पउपभोगवादी सिद्धान्त विकसित करने जा रहे हैं जो *''*उन आपत्तियों से मुक्त होगा जो पहले के संस्करणों पर लगाए गए हैं*''*। (Paul Sweezy, *The Theory of Capialist Development,* New York, Monthly Review Press, 1942, p. 179)

हालाँकि स्वीज़ी जो प्रस्तुत करते हैं वह वही पारम्परिक अल्पउल्पभोगवादी तर्क है कि उपभोग उत्पादन को विनियमित करता है*;* अत: विभाग-एक उर्ध्व रूप से विभाग-दो के अधीन अवस्थिति में एकीकृत है और विभाग-एक में उत्पादन में कोई भी बढ़ोतरी विभाग-दो के बदलावों का प्रभाव होती है। ऐसा मान लेने के बाद पारम्परिक अल्पउपभोगवाद की ओर बढ़ना आसान हो जाता है जिसका तर्क यह है कि चूँकि पूँजीपतियों में मशीनों पर अधिक निवेश करने की प्रवृत्ति होती है इसलिए मशीनों का उत्पादन बढ़ता जाता है। मशीनों के उत्पादन में किसी भी बढ़ोतरी से उपभोग की वस्तुओं में वृद्धि होती है*;* नतीजतन उपभोग उत्पादन के पीछे हो जाता है क्योंकि राष्ट्रीय आय में मज़दूरी का हिस्सा कम हो जाता है और पूँजीपतियों में उपभोग करने की बजाय संचित करने की प्रवृत्ति होती है। इसके फलस्वरूप माँग का फ़ासला बढ़ जाता है जिसका नतीजा या तो संकट या फिर अर्थव्यवस्था के ठहराव (स्टैग्नेशन) के रूप में सामने आता है। ऊपर हम पहले ही इस अवस्थिति की आलोचना कर चुके हैं।

1966 में प्रकाशित अपनी अगली प्रमुख रचना *Monopoly Capital* में स्वीज़ी और बरन अपने विश्लेषण की बुनियाद में कोई विशेष बदलाव नहीं करते हैं। उसमें वे बस इतना जोड़ते हैं कि अति-उत्पादन और अति-क्षमता केवल विभाग-दो तक सीमित नहीं है बल्कि विभाग-एक में भी ऐसा होता है। दूसरे शब्दों में, इज़ारेदारी की अवस्था में पूँजीवाद में लगातार उपभोग की अपनी क्षमता से अधिक उत्पादन या आन्तरिक रूप से पैदा की गई प्रभावी माँग को बढ़ाने की प्रवृत्ति होती है। स्वीज़ी और बरन ये मानकर चलते हैं कि मार्क्स का विश्लेषण मुक्त प्रतिस्पर्द्धा के दौर पर आधारित था (वे प्रतिस्पर्द्धा के नवक्लासिकीय विचार को मार्क्स पर आरोपित करते हैं, हालाँकि मार्क्स ने आदर्श प्रतिस्पर्द्धा की अवधारणा की आलोचना की थी।) और पूँजीवाद की इज़ारेदारी की अवस्था में उनका मूल्य का नियम और मुनाफ़े की गिरती दर की प्रवृत्ति का नियम की अवधारणाएँ प्रासंगिक नहीं रह गयी हैं।

स्वीज़ी और बरन वास्तव में बेशी मूल्य की श्रेणी के स्थान पर *'*आर्थिक अधिशेष*' की* श्रेणी का उपयोग करते हैं। ग़ौरतलब है कि स्वीज़ी और बरन द्वारा प्रस्तुत की गयी अधिशेष की श्रेणी का सीधा-साधा मतलब है समाज के कुल उत्पाद और उसके उस हिस्से के बीच का अन्तर जो व्यय हुए उत्पादन के कारकों को प्रतिस्थापित करने में इस्तेमाल किया गया हो, जिसे आम तौर पर नेट उत्पाद कहते हैं। इस अवधारणा की कोई ऐतिहासिक विशिष्टता नहीं है और उसका उत्पादन सम्बन्धों से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका पूँजीवाद या इज़ारेदारी की अवस्था में पूँजीवाद से विशेष रूप से कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरे, इस अवशेष का प्रत्यक्ष उत्पादक (पूँजीवाद के अन्तर्गत उज़रती मज़दूर) और शोषक (उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के एकाधिकार वाले पूँजीवाद के अन्तर्गत पूँजीपति) से विशेष रूप से कोई लेना-देना नहीं है। आर्थिक अधिशेष की यह अवधारणा किसी भी तरह से अधिशेष को हड़पने की प्रणाली या अतिरिक्त उत्पाद कैसे हड़पा जाता है इसकी व्याख्या किसी भी तरह से नहीं करती है। यह एक ऐसी अवधारणा है जो वृहत् स्तर पर परिचलन के क्षेत्र से सम्बन्धित है। अधिशेष की अवधारणा विशिष्ट रूप से और विशेष तौर पर शोषण से सम्बन्धित नहीं है। यह एक मैक्रोइकॉनोमिक अवधारणा है जिसका कोई माइक्राइकॉनोमिक आधार नहीं है अथवा अधूरा आधार है। *Monopoly Capital* में मात्र अधिशेष का निष्पादन और ख़पत की समस्या पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। अत: समस्या का समाधान परिचलन के स्तर पर किया गया है*;* अधिशेष की ख़पत के लिए पूँजी को बाह्य स्रोतों को खोजना पड़ता है, अन्यथा माँग का फ़ासला बढ़ता जाएगा और व्यवस्था दीर्घकालिक मन्दी, संकट या ठहराव के भँवर में फँस जाएगी। विस्तारित होता यह अधिशेष सैन्य ख़र्चों, विज्ञापन के ज़रिये नए सेल्स प्रयासों से बढ़ाए गए अपव्ययी उपभोग आदि द्वारा केवल अस्थायी तौर पर और आंशिक रूप से ही खपाया जाता है। अत: दीर्घकालिक मन्दी और ठहराव अवश्वंभावी है।

स्वीज़ी और बरन के अनुसार अधिशेष के बढ़ने की एक सतत् प्रवृत्ति होती है, जिसे वे अधिशेष के बढ़ने की प्रवृत्ति का नियम कहते हैं। वे दावा करते हैं कि मुनाफ़े की दर के गिरने की प्रवृत्ति का मार्क्स का नियम और मूल्य का नियम इज़ारेदार पूँजीवाद की अवस्था में लागू नहीं होता है। इज़ारेदार पूँजीवाद के अन्तर्गत, उत्पादन की लागत कम होती जाती है, जबकि दाम बढ़ता जाता है या स्थिर रहता है। यह इज़ारेदार पूँजीवाद को मुनाफ़े की दर को गिरने से रोकने में सक्षम बनाता है और इस प्रकार उनका मुनाफ़ा बढ़ता जाता है। परन्तु, यह तर्क ग़ैर-इज़ारेदार क्षेत्रों में हो रहे उत्पादन को नज़रअन्दाज़ करता है। शिंज़ाबूरो कोशीमूरा ने इज़ारेदारी और इज़ारेदार दामों (जो स्वीज़ी और बरन के विश्लेषण में आश्चर्यजनक रूप से ग़ायब है) का उपयोग करते हुए यह दिखाते हैं कि इज़ारेदार पूँजीवाद वास्तव में मूल्य के नियम के क्रियान्वयन को ही दिखाता है। *पूँजी* के खण्ड तीन में मार्क्स ने लिखा था:

> ''… यदि बेशी मूल्य का औसत मुनाफ़े में समकरण (equalization) में उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों में कृत्रिम या प्राकृतिक इज़ारेदारियों के रूप में और ख़ासकर ज़मीन से जुड़ी सम्पत्ति में बाधा खड़ी होती है जिससे इज़ारेदार कीमतें मुमकिन होती हैं जो उत्पादन की कीमत से और ऐसी इज़ारेदारी द्वारा प्रभावित मालों के मूल्य के ऊपर उठती है तो मालों के मूल्य द्वारा थोपी गई सीमाएँ इस प्रकार नहीं हटेंगी।
>
> कुछ मालों का इज़ारेदार मूल्य केवल अन्य माल-उत्पादकों के मुनाफ़े का एक हिस्सा इज़ारेदार मूल्य वाले मालों को हस्तान्तरित ही नहीं करेगा। उत्पादन के विभिन्न क्षेत्रों के बीच बेशी मूल्य के वितरण में एक स्थानीय हलचल अप्रत्यक्ष रूप से होगी, लेकिन इससे इस बेशी मूल्य की सीमा बिना बदले नहीं रहेगी…जिन सीमाओं के भीतर इज़ारेदार मूल्य मालों की कीमतों को प्रभावित करेंगे वे दृढ़ता से तय होंगे और उनकी गणना सटीकता से की जा सकेगी।''(Karl Marx, *Capital,* volume-3, Progress Publishers, Moscow, 1978 Reprint, p. 861) (अनुवाद हमारा)

अत: इज़ारेदार दाम और इज़ारेदार मुनाफ़ा मूल्य के सिद्धान्त का विस्तार मात्र है, न कि उसका निषेध। इज़ारेदार दाम मालों के दामों के सामान्य विनियमन को एक सीमा के भीतर ही प्रभावित करेगा। इज़ारेदारी का उभार प्रतिस्पर्द्धा का निषेध नहीं करता बल्कि वह उसे एक उन्नत धरातल पर अधिक तीव्रता के साथ पुनरुत्पादित करता है।

स्वीज़ी और बरन द्वारा प्रस्तावित ''अधिशेष के बढ़ने के नियम'' का आनुभविक प्रमाण बहुत कम मिलता है और वह सभी सरकारी ख़र्चों को अधिशेष के रूप में श्रेणीकृत करने पर आधारित है जोकि बहुत ग़लतफ़हमी पैदा करने वाला है। स्वीज़ी और बरन के ब्योरे की एक अन्य समस्या यह है कि वे मानते हैं कि ठहराव अब पूँजीवाद की स्थायी अवस्था है जो बाह्य कारकों द्वारा पैदा किए गए विस्तार के काल द्वारा बाधित होती है। मार्क्स के तर्क के विपरीत इस ठहराव का कारण मुनाफ़े की गिरती दर नहीं बल्कि अल्पउपभोग अथवा वास्तविकीकरण या ख़पत की समस्या है। वास्तविकीकरण के इस संकट के कारण इज़ारेदार पूँजीवाद की इस अवस्था में संकट के बाद ठहराव की एक स्थायी स्थिति आती है। इस प्रकार स्वीज़ी और बरन की दृष्टि में अब परिचलन का क्षेत्र उत्पादन के क्षेत्र को निर्धारित करता है। अत: विनिमय सम्बन्धों को उत्पादन सम्बन्धों पर प्राथमिकता दी जाती है। लग्ज़ेम्बर्ग के साम्राज्यवाद के सिद्धान्त की चर्चा करते समय हम यह दिखा चुके हैं कि विस्तारित पुनरुत्पादन सम्भव है,विभागों के बीच समानुपात सम्भव है और अधिशेष का वास्तविकीकरण व्यवस्था के भीतर किया जा सकता है। इसका एहसास न होने की वजह इस बात को भूलने की एक बुनियादी त्रुटि है कि विभाग-एक स्वयं विभाग-एक के लिए भी उत्पादन करता है (उत्पादन के उन साधनों का उत्पादन करना जो उत्पादन के साधनों का उत्पादन करते हैं) और यह भूलना कि यह प्रवृत्ति संचय के बढ़ने के साथ-साथ बढ़ती जाती है जोकि इस मान्यता के कारण होता है कि पूँजीवाद के अन्तर्गत परिचलन उत्पादन को निर्धारित करता है। दूसरे, ऊपर हमने यह भी दिखाया है कि अल्पउपभोग संकट का कारण नहीं बल्कि लाभप्रदता के संकट का लक्षण है। तीसरे, ठहराव की स्थिति स्थायी नहीं होती क्योंकि ठहराव का हर प्रमुख संकट पूँजी का अवमूल्यन करता है, और ठीक इस अवमूल्यन के कारण ही लाभप्रदता पुनर्स्थापित हो जाती है। इसलिए हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हर संकट/ठहराव व्यवस्था के लिए एक आकस्मिक या दीर्घकालिक *शोधक* प्रक्रिया होती है।

इन सभी समस्याओं के कारण 'मोनोपोली कैपिटल' स्कूल ने साम्राज्यवाद के चरित्र और उसकी भूमिका के बारे में दिग्भ्रमित करने वाले निष्कर्ष निकले हैं। जिसे बाद में 'पेरिफ़री' के नाम से जाना जाने लगा वहाँ उन्नत पूँजीवाद के विस्तार का वास्तविक कारण अधिशेष की खपत यानी वास्तविकीकरण की समस्या है। पूँजी का निर्यात इस समस्या को उन्नत धरातल पर बढ़ा देता क्योंकि पूँजी का यह निर्यात वापस भेजे गए मुनाफ़े को बढ़ा देता है और उसकी वजह से ''माँग का फ़ासला'' और बढ़ जाता है। परन्तु 'मोनोपोली कैपिटल' स्कूल इसकी व्याख्या नहीं कर पाता है कि पूँजीपति पूँजी का निर्यात क्यों करते हैं? स्वीज़ी और बरन के दृष्टिकोण से इज़ारेदार पूँजीवाद के युग में साम्राज्यवाद की तीन प्रमुख विशेषताएँ हैं: एक वर्चस्ववादी साम्राज्यवादी ताक़त के रूप में अमेरिका का उभार जो अपने आर्थिक वर्चस्व को भीषण ताक़त और सैन्यवाद की मदद से क़ायम रखता है; दूसरा समाजवाद का ख़तरा जिसे आर्थिक और सैन्य माध्यमों से सीमित करने और दबाने का अमेरिका निरन्तर प्रयास करता रहता है; *तीसरा* बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का उभार। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का उभार एक नए प्रकार की पूँजीवादी कम्पनी के उभार का संकेत है जो लेनिनकालीन इज़ारेदारियों से अलग है जिनके जड़ें किसी एक राष्ट्र में होती थीं। इसमें कोई संदेह नहीं कि इज़ारेदार कम्पनियों के अस्तित्व के रूप में अहम बदलाव हुए हैं। परन्तु, स्वीज़ी और बरन कहते हैं कि इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने मालों के निर्यात की रणनीति को बदलकर पूँजी निर्यात की रणनीति को अपना लिया और वे तीसरी दुनिया के देशों में उत्पादन को स्थानान्तरित कर रही हैं; *हम देख* चुके हैं कि इस प्रक्रिया की शुरुआत लेनिन के दौर से ही हो चुकी थी और लेनिन ने ऐसे घटनाक्रमों की ओर इंगित किया था। इसके अतिरिक्त, स्वीज़ी और बरन यह दावा करते हैं कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हित राष्ट्रीय हितों से अलग हैं जोकि लेनिनकालीन इज़ारेदारियों में नहीं पाया जाता था। यह भी एक आभासी यथार्थ है। वास्तव में, आज के TNCs/MNCs की नुमाइंदगी साम्राज्यवादी देश (अक्सर उस MNC का गृह देश) या साम्राज्यवादी देशों का कोई ब्लॉक करता है। स्वीज़ी और बरन यह दलील देते हैं कि उपनिवेशों और नव-उपनिवेशों पर साम्राज्यवादी प्रभुत्व की अन्तर्वस्तु यह है कि उन देशों का आर्थिक अधिशेष साम्राज्यवाद द्वारा अपनी ओर खींच लिया जाता है। इस आर्थिक अधिशेष का उपयोग संचय के लिए नहीं किया जाता है क्योंकि दलाल बुर्जुआ इस अधिशेष के एक हिस्से का उपभोग अपनी विलासिता और अपव्यय में कर लेता है। विऔपनिवेशीकरण ने विदेशी पूँजी के अन्तर्वाह को नहीं रोका क्योंकि इन देशों में सामाजिक-आर्थिक विकास के दबाव बहुत अधिक हैं जबकि अधिशेष के स्थानीय स्रोतों को विलासिता और सट्टेबाजी में व्यर्थ किया जाता है। नतीजतन, पूर्व-उपनिवेशों का बुर्जुआ वर्ग विदेशी निवेशों पर निर्भर रहने को मजबूर है। दूसरी ओर इन देशों में पूँजी का निर्यात करने वाली और इन देशों में उत्पादन स्थानान्तरित करने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ इन उद्यमों के वित्तपोषण के लिए स्थानीय पूँजी का इस्तेमाल करती हैं। यह अधिशेष के खपत की समस्या से निजात दिलाने की बजाय उसे बढ़ा देता है।

मार्क्सवाद के 'मंथली रिव्यू' स्कूल के हैरी मैगडॉफ़ ने साम्राज्यवाद की लेनिनवादी अवधारणा की ओर बढ़ने का प्रयास किया, परन्तु स्वीज़ी और बरन की अवस्थिति को बचाने के प्रयास में उनका विश्लेषण समकालीन पूँजीवाद की अन्तर्वस्तु को पकड़ने से चूक जाता है। संक्षेप में, संकट/ठहराव के कारण और साम्राज्यवाद के सम्बन्ध में 'मोनोपोली कैपिटल' स्कूल की अवस्थिति नेट उत्पाद की खपत का अल्पउपभोगवादी तर्क है। इस अवस्थिति की विशेषता उत्पादन सम्बन्धों की बजाय विनिमय सम्बन्धों को प्रधानता देने की है जोकि 'आर्थिक अधिशेष' की अवधारणा से स्पष्ट है। स्वीज़ी और बरन का राजनीतिक विश्लेषण उन तमाम कम्युनिस्टों से मेल खाता है जो दलाल नौकरशाह बुर्जुआ, अर्द्ध-सामन्ती अर्द्ध-औपनिवेशिक या नव-औपनिवेशिक सोशल फ़ॉर्मेशन और नई जनवादी क्रान्ति की अवधारणा से अभी तक चिपके हुए हैं। हम 'मोनोपोली कैपिटल' स्कूल के राजनीतिक अर्थशास्त्र की ग़ैर-मार्क्सवादी जड़ को देख सकते हैं।

वि.स.प. की अगली प्रमुख प्रवृत्ति डिपेन्डेंसी थियरी थी। हालाँकि इस प्रवृत्ति का सबसे ज़्यादा जाने वाला नाम आन्द्रे गुंदर फ्रैंक का है, लेकिन इसके मूल को पॉल बरन के *Political Economy of Growth* में पाया जा सकता है। उसमें बरन तीसरी दुनिया के देशों के अल्पविकसित होने और उनमें पूँजीवादी औद्योगिकीकरण हो पाने में उनकी अक्षमता की जड़ों को साम्राज्यवादी देशों द्वारा पहले उपनिवेशवादवाद और फिर नव-उपनिवेशवाद के ज़रिये इन देशों के अधिशेष को हड़प लेने में तलाशते हैं। पूर्व उपनिवेशों के दलाल बुर्जुआ वर्ग ने अधिशेष को हड़पने में साम्राज्यवादी बुर्जुआ वर्ग के साथ अपनी हिस्सेदारी के बदले में सहयोग किया। परन्तु चूँकि यह बुर्जुआ वर्ग अपने हिस्से को राज्य के नौकरशाही तन्त्र और अपनी विलासिता में ख़र्च कर देता है, इसलिए संचय सम्भव नहीं है। अत: इन देशों में योजनाबद्ध ढंग से अल्पविकास

का विकास हुआ है। यहाँ साम्राज्यवाद अधिशेष को हड़पने और उसे खपाने पर आधारित है। परन्तु इस पर ग़ौर नहीं किया जाता है कि वह अधिशेष पैदा ही कैसे होता है।

आन्द्रे गुंडर फ्रैंक मेट्रोपॉलिस/सेंटर द्वारा तीसरी दुनिया या 'पेरिफ़री' के अधिशेष को हड़पने के इस बुनियादी विचार को लेते हैं। बाद में वे कहते हैं कि 'पेरिफ़री' और 'सेंटर' एक देश के भीतर भी होते हैं और इसलिए हमें मेंट्रोपॉलिटन क्षेत्रों और पेरिफ़रल क्षेत्रों के बारे में बात करनी चाहिए जिनकी सरहदें कभी-कभी राष्ट्रीय सरहदों से मेल खाती हैं। फ्रैंक के अनुसार, विकास और अल्पविकास एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

'कोर'/'मेट्रोपॉलिस' में विकास 'पेरिफ़री' में अल्पविकास के बिना सम्भव ही नहीं है। यह 'मेट्रोपॉलिस' द्वारा 'पेरिफ़री' से अधिशेष हड़पने की प्रक्रिया पर आधारित है। वे यह दलील देते हैं कि पश्चिमी यूरोप से दुनिया के अन्य भागों में पूँजीवाद के विस्तार के साथ एक विश्व बाज़ार अस्तित्व में आने के समय से ही अधिशेष को हड़पने के माध्यम से 'मेट्रोपॉलिस' और 'पेरिफ़री' के द्वंद्वात्मक ध्रुवों वाली एक विश्व पूँजीवादी व्यवस्था अस्तित्व में आयी (पहले वे कहते हैं कि 16वीं सदी से और बाद में वे इसे खींचकर 5000 साल पहले ले जाते हैं!)। जैसे-जैसे पूँजीवाद विकसित हुआ, 'मेट्रोपॉलिस' का विकास और 'पेरिफ़री' का अल्पविकास भी सुदृढ़ होता गया। फ्रैंक बरन से इस बात पर असहमत हैं कि अल्पविकसित क्षेत्रों में पूँजीवादी विकास नहीं हुआ। उनके अनुसार, अल्पविकसित क्षेत्र पूँजीवादी हैं और पूँजीवाद में विकसित और अल्पविकसित क्षेत्रों के ये दो ध्रुव आवश्यक रूप से होते हैं। फ्रैंक यह भी दलील देते हैं कि समूची पूँजीवादी व्यवस्था में एक पदानुक्रम है जिसमें कुछ देश 'मेट्रोपॉलिस' कहे जा सकते हैं जबकि अन्य 'पेरिफ़री' तथा कुछ अन्य 'सेमी-पेरिफ़री' कहे जा सकते हैं। परिधिगत क्षेत्रों में विकास मुख्य क्षेत्रों में विकास का व्युत्पन्न होता है। सैटेलाइट और परिधिगत देश मुख्य देशों से पूँजी के भेदन के कारण दलाल और वाणिज्यिक बुर्जुआ वर्ग पैदा करते हैं जो मुख्य देशों के बुर्जुआ वर्ग के दलाल के रूप में काम करते हैं। जैसाकि स्पष्ट है, फ्रैंक की नज़र में पूँजीवाद विदेशी व्यापार, औपनिवेशिक यात्राओं और उपनिवेशों की स्थापना के ज़रिये विश्व बाज़ार के विस्तार के फलस्वरूप अस्तित्व में आया। पूँजीवाद की इस परिभाषा का मार्क्स की परिभाषा से कोई लेना-देना नहीं है जिन्होंने यह दिखाया था कि विदेशी व्यापार, व्यापार और विश्व बाज़ार का अस्तित्व में आना सामन्ती सम्बन्धों के युग में भी मुमकिन है। दूसरी बात, जो चीज़ पूँजीवाद, साम्राज्यवाद और अल्पविकास के उभार की जड़ में है वह है 'अधिशेष' का वास्तविकीकरण।

यह सिद्धान्त इसकी व्याख्या करने की जहमत नहीं उठाता कि वे कौन से वर्ग-सम्बन्ध, उत्पादन सम्बन्ध और उत्पादन प्रणाली थे जिनकी वजह से इस अधिशेष का उत्पादन हो पाया, या फिर एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के इस अधिशेष के हड़पे जाने की प्रणाली क्या थी। अधिशेष का अस्तित्व मानकर चला जाता है। अत: फ्रैंक का पूरा ध्यान विनिमय सम्बन्धों पर है और वे पूँजीवाद की संकल्पना उत्पादन की प्रणाली तथा साम्राज्यवाद संकल्पना पूँजीवाद की एक विशेष अवस्था नहीं बल्कि एक सुनिश्चित विनिमय सम्बन्धों पर आधारित एक वैश्विक व्यवस्था के रूप में करते हैं। नतीजतन फ्रैंक के सिद्धान्त में वर्ग संघर्ष का कोई स्थान नहीं है। बरन और फ्रैंक दोनों के लिए पूँजी संचय का कारण श्रम-शक्ति का शोषण नहीं बल्कि एक क्षेत्र द्वारा दूसरे क्षेत्र के अधिशेष को हड़पना और पुनर्वितरण है, जो पहले क्षेत्र में विकास और संचय तथा दूसरे देश में अल्पविकास पैदा करता है। लेकिन जैसा कि मार्क्स ने कहा था, ''मुनाफ़े का पहले अस्तित्व होना चाहिए, उसके बाद ही उसका पुनर्वितरण हो सकता है''। डोर और वीक्स ने फ्रैंक पर सही टिप्पणी की है:

> ''उत्पादन प्रणाली का नज़रअन्दाज़ करने से स्वयं उत्पादन नज़रअन्दाज़ हो जाता है। जब उत्पादन की प्रक्रिया से विश्लेषण का सम्पर्क ख़त्म हो जाता है तो यह बुनियादी सामाजिक सूक्ति दृष्टि से ओझल हो जाती है कि सबसे आदिम समाजों को छोड़कर सभी समाज प्रत्यक्ष उत्पादकों के शोषण पर आधारित होते हैं। और समाजों के किसी विश्लेषण में अगर विनियोजन (और इसलिए शोषण) की प्रणाली केन्द्र में न हो तो *वर्गों* की चर्चा की कोई वैज्ञानिक अन्तर्वस्तु नहीं रह जाती है। उत्पादन की प्रणाली के सन्दर्भ के बिना वर्ग की अवधारणा प्रतीति के क्षेत्र का महज़ एक वर्गीकरण प्रस्तुत करती है, जो लेबल चस्पा करने का कमोबेश एक मनमानी कवायद होती है।'' (Dore, Elizabeth and Weeks, John, 'International Exchange and the Causes of Backwardness', *Latin American Perspective,* Spring, 1979) (अनुवाद हमारा)

वि.स.प. की तीसरी प्रवृत्ति 'डिपेन्डेंसी' थियरी से सम्बन्धित है और उसका लक्ष्य उस प्रक्रिया को समझना है जिसके माध्यम से विकसित क्षेत्रों द्वारा अल्पविकसित क्षेत्रों का अधिशेष हड़पा जाता है। इस प्रवृत्ति की शुरुआत अरगिरी एमैनुएल ने की थी जिन्होंने असमान विनिमय का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। एमैनुएल यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि दुनिया के विकसित क्षेत्रों और अल्पिवकसित क्षेत्रों के मज़दूरी के अन्तर के कारण मूल्य का अल्पविकसित क्षेत्रों से विकसित क्षेत्रों की ओर लगातार प्रवाह होता रहता है। मूल्य के इन स्थानान्तरणों के कारण आय, जीवन स्थिति और निवेश कम हो जाते हैं और पेरिफ़री में विकास का मार्ग विकृत हो जाता है जहाँ प्राथमिक वस्तुओं के उत्पादन को निर्यात के लिए और विलासित की वस्तुओं को घरेलू उपभोग के लिए प्राथमिकता दी जाती है, जो दीर्घकालिक अल्पविकास की परिस्थितियाँ तैयार करती हैं। रिकार्डो के तुलानात्मक लागत के सिद्धान्त पर आधारित नव-क्लासिकीय व्यापार सिद्धान्त की ही तरह एमैनुएल यह मानकर चलते हैं कि सभी देश एक ही प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल कर रहे हैं और एक ही उत्पाद पैदा कर रहे हैं, उत्पादन की इन तकनीकों के लिए पूँजी के एक निश्चित संघटन की की आवश्यकता है; मुनाफ़े की दर की एकरूपता अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर होती है जिसके कारण उत्पादन का एक अन्तरराष्ट्रीय दाम होता है; इन बिन्दुओं को मान लेने पर मुनाफ़े की दर वहाँ ज़्यादा होगी जहाँ मज़दूरी कम होगी। केवल मालों के विनिमय पर आधारित रिकार्डो द्वारा प्रस्तावित तुलनात्मक लागत के सिद्धान्त को संशोधित करने के लिए यह ध्यान रखना होगा कि साम्राज्यवाद के युग से पूँजी का निर्यात प्रभावी प्रवृत्ति बन चुकी है। (रिकार्डो ने मुद्रा के परिमाण सिद्धान्त के आधार पर यह माना था कि अन्तरराष्ट्रीय व्यापार सबके लिए लाभदायी होगा क्योंकि मुद्रा के बदलती मात्राओं के कारण व्यापार घाटे हमेशा व्यापार अधिशेषों में परिवर्तित होंगे व्यापार अधिशेष हमेशा व्यापार घाटों में; हालाँकि हालाँकि यह सिद्धान्त रिकार्डो के मूल्य के सिद्धान्त के विपरीत था, फिर वे उससे चिपके रहे)। एमैनुएल रिकार्डो के सिद्धान्त को उसी की ज़मीन पर स्वीकार करते हैं (मालों का विनिमय), लेकिन यह दलील देते हैं कि पूँजी के निर्यात के मुख्य प्रवृत्ति बन जाने की सूरत में पूँजी का अन्तरराष्ट्रीय प्रवाह परिधिगत अर्थव्यवस्थाओं के लिए नुकसानदेह होगा और उनको दीर्घकालिक अल्पविकास की ओर धकेल देगा।

इसका कारण यह है कि परिधिगत अर्थव्यवस्था में निम्न मज़दूरी विदेशी निवेश को आमन्त्रित करेगी जिसके कारण मेट्रोपॉलिटन केन्द्रों की ओर मूल्य का स्थानान्तरण होगा। अत: प्रतिस्पर्द्धा और पूँजी की गति के कारण अल्पविकसित देशों से उन्नत साम्राज्यवादी देशों की ओर अधिशेष मूल्य को व्यवस्थित ढंग से और लगातार स्थानान्तरित होगा: इसी को एमैनुएल 'असमान विनिमय' कहते हैं। इस सिद्धान्त की बुनियाद ही दोषपूर्ण है। मसलन, एमैनुएल के लिए मज़दूरी पूर्व-निर्धारित होती है और उत्पादन के दाम के निर्धारण में वह एक अचर राशि होती है।

मूल्य के नियम द्वारा श्रमशक्ति के मूल्य और उसकी परिघटनात्मक अभिव्यक्ति यानी मज़दूरी (बतौर ''एक दिन के श्रम का दाम'') के मूल्य निर्धारण को लेकर यह एक बहुत बड़ी गलतफ़हती है। अलग-अलग देशों में श्रमशक्ति का मूल्य आमतौर पर ख़ासकर मज़दूरों द्वारा उपयोग किए गए उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों की उत्पादकता से निर्धारित होती है। यह उत्पादकता किसी देश में उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धों के विकास के स्तर द्वारा निर्धारित होती है।

परन्तु एमैनुएल का विश्लेषण उत्पादन के क्षेत्र, उत्पादन सम्बन्धों और वर्ग संघर्ष की अनदेखी करके उनकी बजाय अधिशेष मूल्य के वितरण के क्षेत्र पर ध्यान केन्द्रित करता है। दूसरे, उत्पादन की एकल वैश्विक प्रौद्योगिकी की मान्यता और अलग-अलग देशों में अलग-अलग मज़दूरी का तात्पर्य है कि दाम और मुनाफ़ा दोनों की दरें बराबर नहीं हो सकतीं। दाम अलग-अलग होने और मुनाफ़े की दर बराबर होने के लिए व्यापार की बंदिशें आवश्यक होती हैं, और उस परिस्थिति में मूल्य का कोई हस्तान्तरण नहीं होता है या फिर मुनाफ़े की दर परिवर्तित होती रहती है तथा अलग-अलग देशों में कीमते इक्वलाइज़ होती हैं। लेकिन उस परिस्थिति में समूचा उत्पादन अल्पविकसित देशों की ओर स्थानान्तरित हो जाएगा जो अन्तत: हर प्रकार की निर्भरता को दूर कर देगा। हालाँकि विकसित देशों और अल्पविकसित देशों के बीच का अन्तर एक यथार्थ है। परन्तु, उसकी व्याख्या मार्क्स की पद्धति से की जा सकती है, न कि नव-रिकार्डियनवाद का सहारा लेकर, जैसाकि एमैनुएल करते हैं। सच्चाई यह है कि अधिक कार्यकुशल देश उत्पादक शक्तियों के विकास के कम स्तर वाले देशों के साथ जिस निरपेक्ष लाभ का लाभ उठाते हैं उससे एक ढाँचागत असमानता पैदा होती है और एमैनुएल की मान्यता के विपरीत यह उस काल के लिए भी लागू होता है जब मालों का विनिमय प्रभुत्वशाली था। निरपेक्ष लाभ इस तथ्य में निहित है कि एक ही मालों के मूल्य उच्च उत्पादकता वाले देशों

में कम होते हैं, जो उन्हें अन्तरराष्ट्रीय रूप से अधिक प्रतिस्पर्द्धी बनाते हैं। नतीजतन अल्पविकसित देश सतत् रूप से व्यापार घाटे में रहते हैं। जैसाकि अनवर शेख ने दिखाया है पूँजी के निर्यात और उत्पादन के तीसरी दुनिया के देशों की ओर स्थानान्तरित होने के युग में मज़दूरी में अन्तर वास्तव में दोहरा प्रभाव उत्पन्न करते हैं। इससे यह मुमकिन है कि अधिशेष मूल्य का स्थानान्तरण शून्य हो और फिर भी असमान विकास तथा परिधि का अल्पविकास मौजूद हो। एमैनुएल के लिए अलग-अलग मज़दूरी की दर के कारण जो असमानता *महज़* राष्ट्रों की असमानता है वह वास्तव में पूँजियों के बीच की असमानता की अभिव्यक्ति है जो पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों और उत्पादक शक्तियों के असमान विकास के नियम का नतीजा है। पूँजी के सान्द्रण और केन्द्रीयकरण के नियम राष्ट्रीय स्तर के साथ ही साथ अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भी मान्य हैं। वैसे भी विनिमय के पैटर्न और अधिशेष मूल्य का स्थानान्तरण पूँजीवादी विकास या अल्पविकास के कारण नहीं है, बल्कि यह विकास और अल्पविकास उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धों के असमान विकास में निहित हैं। यही वजह है कि एमैनुएल का सिद्धान्त प्रूधों के समाधान यानी मज़दूरी की समानता की याद दिलाता है। मज़दूरी का अन्तरराष्ट्रीयकरण पिछड़े पूँजीवादी देशों के अल्पविकास की समस्या का समाधान नहीं कर सकता है; यह देशी पूँजी को तबाह करने के अलावा और कुछ नहीं कर सकता है! हर जगह एक ही मज़दूरी की दलील मनोगत रूप से हर जगह के मज़दूरों का समान रूप से शोषण करने की दलील जैसी है। वस्तुगत रूप से तो ऐसा भी नहीं हो सकता। किसी भी देश की वास्तविक मज़दूरियाँ अन्ततोगत्वा उसकी उत्पादन की शक्तियों पर निर्भर होती हैं। यदि बांग्लादेश जैसे देश के मज़दूर उस देश के समूचे सामाजिक उत्पाद का उपभोग कर सकने लायक मज़दूरी पा जाएँ तब भी उनकी मज़दूरी औसत अमेरिकी मज़दूरी के बराबर नहीं हो सकती क्योंकि बांग्लादेश की प्रति व्यक्ति सामाजिक उत्पाद औसत अमेरिकी मज़दूर की वास्तविक मज़दूरी से कम है। हम देख सकते हैं कि वि.स.प परिप्रेक्ष्य कितना बेतुका है।

इमैनुएल वालरस्टीन की 'वर्ल्ड सिस्टम्स थियरी' की चर्चा करना आवश्यक नहीं है क्योंकि वह कई मायनों में फ्रैंक की 'डिपेन्डेंसी थियरी' की ही एक क़िस्म और विस्तार है। इसी तरह से सामिर अमीन की वैश्विक संचय की थियरी एमैनुल की असमान विनिमय की थियरी का विस्तार है, लेकिन साथ ही उसमें डिपेन्डेंसी थियरी और वर्ल्ड सिस्टम्स थियरी का पल्लवग्राही मिश्रण है। वि.स.प. के सिद्धान्तों के सभी रूप उत्पादन के क्षेत्र की अवहेलना करते हैं और परिचलन (विनिमय और वितरण) के क्षेत्र, अल्पउपभोगवाद, डिपेन्डेंसी और अल्पविकास पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। यहाँ यह ग़ौर करना ज़रूरी है कि नवजनवादी क्रान्ति के बहुतेरे सिद्धान्तकार अपने देशों के आन्तरिक अन्तर्विरोधों और उत्पादन सम्बन्धों के अध्ययन के आधार पर अर्द्ध-सामन्ती सम्बन्धों के अस्तित्व को साबित न कर पा सकने की सूरत में दलाल पूँजीपति वर्ग के अतिस्त्व, नवऔपनिवेशिक रूप में जारी साम्राज्यवादी प्रभुत्व और ''पर्याप्त पूँजीवादी विकास'' के अभाव को साबित करने के लिए डिपेन्डेंसी और असमान विनिमय के सिद्धान्तों पर अत्यन्त निर्भर होते हैं। परन्तु ये सिद्धान्त अपने मूल से ही मार्क्सवादी-लेनिनवादी पद्धति से बहुत दूर हैं।

क्लासिकीय मार्क्सवदी अवस्थितियों की पुनर्प्रस्तुति: जॉन वीक्स और अनवर शेख

1970 के दशक के अन्त और 1980 के दशक की शुरुआत में विभिन्न वि.स.प. सिद्धान्तों की प्रतिक्रिया में कुछ अध्ययन उभरे जिन्होंने उनको चुनौती दी और पूँजी संचय, पूँजीवाद के विस्तार, इज़ारेदार पूँजी और साम्राज्यवाद भौतिकवादी और मार्क्सवादी अवस्थिति की पुनर्प्रस्तुति का प्रयास किया। इसमें मुख्य रूप से रॉबर्ट ब्रेनर, जॉन वीक्स और अनवर शेख के अध्ययन शामिल हैं। ब्रेनर का अध्ययन पूँजीवाद के विस्तार से उतना सम्बन्धित नहीं है जितना कि वह पूँजीवाद के उद्भव से सम्बन्धित है। वह वि.स.प. के इस सामान्य सिद्धान्त, मुख्य रूप से स्वीज़ी, बरन और फ्रैंक, को चुनौती देता है कि पूँजीवाद का उद्भव बाज़ार के विस्तार के कारण होता है, हालाँकि इन तीन वि.स.प. के प्रतिपादकों के बीच महत्वपूर्ण मतभेद हैं। हम ब्रेनर के अध्ययन को को यहाँ छोड़कर जॉन वीक्स, एलिज़ाबेथ डोर और अनवर शेख की दलीलों पर ध्यान केन्द्रित करेंगे।

वीक्स और डोर ने अपना अध्ययन 1979 में प्रकाशित किया और वीक्स ने 1970 के दशक के अन्त और 1980 के दशक की शुरुआत में कई अन्य निबन्ध और पुस्तकें प्रकोशित कीं। उनकी दलील यह है कि उत्पादन के भौतिकवादी सिद्धान्त की बुनियाद उत्पादन के सामाजिक सम्बन्धों का पुनरुत्पादन है। पूँजीवाद के सन्दर्भ में यह सिद्धान्त पूँजी संचय का सिद्धान्त है। वीक्स और डोर पिछड़े देशों से अधिशेष हड़पने पर आधारित पूँजीवाद के विकास पर 'डिपेन्डेंसी थियरी' द्वारा डाले जाने वाले ज़ोर की आलोचना करते हैं। चूँकि यह सिद्धान्त केवल विकसित और अल्पविकसित क्षेत्रों के बीच के विभाजन को ही देखता है, इसलिए वह उन देशों के राजनीतिक सरहदों की व्याख्या नहीं कर सकता जो अन्तरराष्ट्रीय संचय और असमान विकास में आवश्यक हैं।

वे दिखाते हैं कि 'डिपेन्डेंसी' सिद्धान्तकारों के दावों के विपरीत अधिकांश पूँजी विकसित देशों की ओर प्रवाहित होती है। वे यह भी दिखाते हैं कि यह आवश्यक नहीं है कि बेशी उत्पाद का अस्तित्व पूँजीवादी संचय को इंगित करे। विस्तारित पुनरुत्पादन अधिशेष के पुनर्वितरण से नहीं होता बल्कि उत्पादक शक्तियों के विकास के फलस्वरूप बढ़ने वाले बेशी मूल्य से होता है। पूँजीवादी विकास और पूँजी सम्बन्धों के अस्तित्व की पहली शर्त होती है ''दोहरे अर्थों में मुक्त'' उज़रती मज़दूर के वर्ग और उत्पादन के साधनों के स्वामित्व पर एकाधिकार वाले पूँजीपति वर्ग का अस्तित्व में आना। श्रम शक्ति के माल बने बिना पूँजी सम्बन्ध नहीं अस्तित्व में आ सकते हैं। दूसरी बात, पूँजी के संचय तथा सान्द्रण व केन्द्रीयकरण का नियम पूँजी के विस्तार की आवश्यकता को दिखाता है। राष्ट्रीय सरहदों के आरपार पूँजी के विस्तार से विकसित देशों के बीच तथा विकसित व अल्पविकसित देशों के बीच विनिमय होता है।

वीक्स की दलील के अनुसार प्रतिस्पर्द्धा पूँजीवाद का अन्तर्निहित तत्व है और प्रतिस्पर्द्धा के बिना उसका अस्तित्व ही नहीं हो सकता है। मार्क्स ने कभी भी प्रतिस्पर्द्धा और इज़ारेदारी के बीच कभी भी द्विभाजन नहीं किया था क्योंकि स्वीज़ी और बरन के दावों के विपरीत मार्क्स का विश्लेषण कभी भी मुक्त प्रतिस्पर्द्धा की नवक्लासिकीय अवधारणा पर आधारित नहीं रहा। इज़ारेदारी प्रतिस्पर्द्धा का निषेध नहीं बल्कि उच्चतर स्तर पर उसे और तीव्र रूप में पुनरुत्पादित करती है क्योंकि इज़ारेदारी की अवस्था में पूँजी उत्पादन की शाखाओं की सीमाओं तक सीमित रहने की बजाय उनके आरपार विचरण कर सकती है। मार्क्स के *ग्रुंडरिस्से* से उद्धृत करके वीक्स यह दिखाते हैं कि पूँजीवाद के अन्तर्गत प्रतिस्पर्द्धा का आधार उत्पादों की बिक्री यानी बाज़ार में नहीं होता। पूँजीवाद में प्रतिस्पर्द्धा इस रूप में *प्रतीत* होती है। परन्तु प्रतिस्पर्द्धा का वास्तविक आधार यह उज़रती मज़दूर की मौजूदगी होता है और इस श्रम शक्ति की ख़रीद प्रतिस्पर्द्धा की परिस्थितियाँ पैदा करती है। मुक्त उज़रती श्रम और उत्पादन के साधनों के बाज़ार के रूप में बुर्जुआ उत्पादन की परिस्थितियों का अर्थ है: पूँजी द्वारा उत्पादक शक्तियों को उद्योग की उन शाखाओं को अधीन करने के लिए तैयार करने की सम्भावना हमेशा मौजूद रहती है जिनमें मुनाफ़े की दर औसत से अधिक होती है। अत: पूँजीवाद के अन्तर्गत प्रतिस्पर्द्धा उत्पाद के बाज़ार की परिस्थितियों पर नहीं बल्कि श्रमशक्ति के माल के रूप में मौजूदगी से निर्धारित होती है, हालाँकि यह बाज़ार में बिक्री के लिए संघर्ष के रूप में प्रतीत होती है। अत: पूँजी के निर्यात को प्रेरणा बुनियादी पूँजी सम्बन्ध और अधिकतम मुनाफ़े की प्रेरणा से मिलती है।

यदि उत्पादन की विभिन्न शाखाओं में पूँजी की संख्या मुक्त प्रतिस्पर्द्धा के कारण ज़बर्दस्त ढंग से कम हो जाती है तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो गई है। इज़ारेदारी की यह अवस्था प्रतिस्पर्द्धा के बुनियादी स्रोत, अर्थात् श्रम शक्ति की माल के रूप में मौजूदगी को नहीं बदलती है। इसके अतिरिक्त मार्क्स कभी भी ''मुक्त प्रतिस्पर्द्धा'' के ''स्वर्ण युग'' में यकीन नहीं करते थे। पूँजीवाद के आरम्भिक दौरों में भी प्रतिस्पर्द्धा के सामने प्राक्-पूँजीवादी उत्पादन प्रणालियों और क्रेडिट की कमी की बाधा थी। वह शाब्दिक अर्थों में मुक्त प्रतिस्पर्द्धा से नहीं बल्कि सीमित प्रतिस्पर्द्धा से शुरू हुई थी। बढ़ता सान्द्रण और केन्द्रीयकरण जिससे इज़ारेदारी की अवस्था पैदा हुई, प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त नहीं करता बल्कि उसे तीव्र कर देता है। वीक्स मार्क्स को उद्धृत करते हैं:

> ''हम सभी जानते हैं कि प्रतिस्पर्द्धा सामन्ती इज़ारेदारी द्वारा पैदा की गई थी। इसलिए प्रतिस्पर्द्धा मूल रूप में इज़ारेदारी की विराधी थी न कि इज़ारेदारी प्रतिस्पर्द्धा की विरोधी। इसलिए आधुनिक इज़ारेदारी केवल एंटीथेसिस नहीं बल्कि इसके उलट यह सच्ची सिंथेसिस है।
>
> थीसिस: सामन्ती इज़ारेदारी, प्रतिस्पर्द्धा से पहले

एंटी-थीसिस: प्रतिस्पर्द्धा

सिंथेसिस: आधुनिक इज़ारेदारी, जो सामन्ती इज़ारेदारी का निषेध है क्योंकि वह प्रतिस्पर्द्धा की व्यवस्था को इंगित करता है और जहाँ तक कि वह इज़ारेदारी है वह प्रतिस्पर्द्धा का निषेध है।''

(Karl Marx, *The Poverty of Philosophy,* Foreign Languages Press, Peking, Third Edition, 1977, p. 145) **(अनुवाद हमारा)**

इसी तरह लेनिन का मानना था कि इज़ारेदारी प्रतिस्पर्द्धा को पुनरुत्पादित करती है और उसे तीव्र करती है। इज़ारेदारी की अवस्था में प्रतिस्पर्द्धा साम्राज्यवाद के रूप में अपनी उच्चतम अवस्था में पहुँच जाती है। साम्राज्यवाद को समझने के लिए असमान विकास का नियम और प्रतिस्पर्द्धा के नियम को समझना ज़रूरी है। इज़ारेदार पूँजीवाद असमान विकास को बढ़ा देता है। कुछ शाखाओं का इज़ारेदारीकरण उन शाखाओं की इज़ारेदारी कर रहे पूँजीवादी संघों के लिए अतिलाभ की परिस्थितियाँ बनाता है।

अन्य बड़े पूँजीवादी संघ इन सेक्टरों में घुसपैठ करने की कोशिश करते हैं, लेकिन छोटी कम्पनियाँ ऐसा नहीं कर सकतीं। नतीजतन प्रतिस्पर्द्धात्मक संघर्ष ज़्यादा से ज़्यादा पूँजीवादी इज़ारेदारियों के बीच सिमटता जाता है। परन्तु वह प्रतिस्पर्द्धा का अन्त नहीं होती बल्कि उच्चतम स्तर पर उसकी निरन्तरता होती है। इज़ारेदारी किसी सेक्टर में अस्थायी तौर पर तकनीकी विकास को धीमा कर सकती है। ऐसे दौर साम्राज्यवाद की अवस्था में पूँजीवाद को उसका परजीवी चरित्र प्रदान करते हैं। हालाँकि ऐसे व्यवधान अस्थायी होती हैं और जल्द ही उस सेक्टर में एक नया बड़ा प्रतिस्पर्द्धी आ जाता है जो सेक्टर की पुरानी इज़ारेदारी को तोड़ देता है। जब यह प्रक्रिया सामान्य रूप से अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर घटित होती है तो यह पूँजीवादी इज़ारेदारी संघों के बीच तनाव पैदा करती है जो अपने-अपने राष्ट्र राज्यों या राष्ट्र राज्यों के समूह की गुहार लगाते हैं हैं। इससे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष साम्राज्यवादी झड़पें पैदा होती हैं। इसके अतिरिक्त वीक्स आगे कहते हैं कि इज़ारेदारी की अवस्था मार्क्स द्वारा प्रतिपादित प्रतिस्पर्द्धा के नियम का निषेध नहीं करती है। दूसरे, विश्व स्तर पर पूँजी संचय की प्रक्रिया उन देशों या राष्ट-राज्यों के स्तर पर जारी रहती है जिनका शासन सुनिश्चित 'टेरिटरी' पर नियन्त्रण करने वाले विभिन्न शासक वर्गों के हाथ में होता है।

राष्ट्र और कुछ नहीं बल्कि पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों का बुर्जुआ राजनीतिक और सामाजिक संघनन होता है। विश्व स्तर पर पूँजी संचय की यह प्रक्रिया विश्व स्तर पर बेशी मूल्य के उत्पादन और हस्तगतीकरण पर आधारित होती है, न कि ''आर्थिक अधिशेष के हड़पने'' पर जैसा कि 'मोनोपोली कैपिटल' स्कूल और 'डिपेन्डेंसी' सिद्धान्तकार कहते हैं। नव-उपनिवेशवादों और अर्द्ध-उपनिवेशवादी देशों में अल्पविकास का कारण महज़ साम्राज्यवादी देशों द्वारा हड़पा जाने वाला आर्थिक अधिशेष नहीं है। बल्कि इन देशों में पूँजीवादी विकास में बाधा प्राक्-पूँजीवादी सम्बन्ध पहुँचा रहे हैं। इस प्रकार वीक्स साम्राज्यवादी देशों द्वारा अधिशेष के हड़पने से उपजे अल्पविकास से निर्धारित करने की बजाय इन देशों के आन्तरिक अन्तर्विरोधों को प्रधानता देते हैं। उनके लिए सच्चाई ठीक इसके उलट है। इन पिछड़े देशों से विकसित देशों की ओर बेशी मूल्य का हस्तान्तरण इन देशों के उत्पादन सम्बन्धों और वर्ग संघर्ष से निर्धारित होता है। वीक्स के अनुसार इन अर्थव्यवस्थाओं के पूँजीवादी रूपान्तरण एक मुख्य बाधा कृषि में प्राक्-पूँजीवादी सम्बन्धों की मौजूदगी है जिसके कारण इस सेक्टर में उत्पादकता नहीं बढ़ी।

इसलिए श्रम शक्ति का मूल्य नीचे नहीं आता और पूँजी संचय संतोषजनक ढंग से नहीं प्रगति करता है। किसी एक सेक्टर में ही उत्पादकता का बढ़ना अस्थायी तौर पर अति-लाभ को पैदा करता है। जैसे ही शाखा की अन्य कम्पनियों द्वारा उन्नत प्रौद्योगिकी अपनायी जाती है अधिशेष मूल्य में यह अस्थायी वृद्धि समरूप हो जाती है और विलुप्त हो जाती है। अत: कृषि में उत्पादकता और आवश्यक श्रम काल के ज़्यादा से ज़्यादा घटना निरन्तर संचय के लिए आवश्यक है। पिछड़े देशो में यह प्रक्रिया नहीं मुकम्मिल हुई।

दूसरी बात, विदेशों से पूँजी का निर्यात श्रम शक्ति के कम मूल्य के कारण नहीं बल्कि इस कारण होता है कि उन्नत प्रौद्योगिकी की मदद से विदेशी पूँजी उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन पिछड़े देश की घरेलू पूँजी की तुलना में कहीं कम लागत में कर सकती है। इसलिए *मुख्य प्रेरक शक्ति*

मुनाफ़े की ऊँची दर है। यदि पूँजी निर्यात पिछड़े देशों में विकसित देशों की तुलना में मुनाफ़े की ऊँची दर दे सकता है तो पूँजी निर्यात की जाएगी। पिछड़े देशों कम मज़दूरी विदेशी और देशी दोनों तरह की पूँजी के लिए कम होती है।

इसलिए वास्तविक कारक विकसित देशों की उन्नत उत्पादक शक्तियाँ और पिछड़े देशों में पूँजी के आवयविक संघटन का कम होना है जिससे मुनाफ़े की दर अधिक हो जाती है। परन्तु यह दलील थोड़ी असन्तुलित है क्योंकि तथाकथित 'ग्लोबल साउथ' पूँजी को निश्चित रूप से आकर्षित करता है। भले ही इसका तात्पर्य इस देशों में ''राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग'' का राष्ट्रीय उत्पीड़न न हो, यह तो स्वीकार किया ही जाना चाहिए कि इन देशों में कम मज़दूरी उनमें पूँजी निर्यात का एक कारण है। दूसरी बात, ऑटोमोबाइल जैसे उच्च-स्तर के उद्योगों में प्रौद्योगिकी का अन्तर या तो अनुपस्थित है या नगण्य है। इसलिए चीन और भारत जैसे देशों में पूँजी निर्यात की वजह महज़ पश्चिमी पूँजी की तकनीकी श्रेष्ठता नहीं हो सकती। इन देशों में मुनाफ़े की ऊँची दर का एक कारण निश्चित रूप से पूँजी के आवयविक संघटक का कम होना है, लेकिन कम मज़दूरी के पहलू से इनकार नहीं किया जा सकता है।

मुनाफ़े की इस उच्च दर के कारण स्थानीय प्रतिस्पर्द्धी अगर उन्नत प्रौद्योगिकी को नहीं अपनाते हैं जो वे या तो तबाह हो जाते हैं या फिर उन्हें उन शाखाओं से बाहर जाना पड़ता है जहाँ विदेशी पूँजी का प्रवेश होता है। इन शाखाओं में नए अन्तरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धियों का प्रवेश होता है और इन देशों में प्रतिस्पर्द्धा की राह के तमाम अवरोधों के बावजूद मालों के मूल्य में एक नए निम्न औसत सामाजिक मूल्य की ओर जाने की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार विदेशी पूँजी का अति-लाभ समाप्ति की ओर अग्रसर होगा।

बेशी मूल्य की दर मुनाफ़े की गिरती दर को रोक पाने के लिए आवश्यक गति से नहीं बढ़ पाती, ऐसा इसलिए भी होता है कि इन देशों में कृषि क्षेत्र की उत्पादकता कम होती है। इस वजह से मुनाफ़े की दर का गिरना जारी रहता है। नतीजतन विदेशी पूँजी नई शाखाओं की ओर भागती है और यह प्रक्रिया दोहरायी जाती है, अक्सर उन शाखाओं के स्थानीय पूँजीपति वर्ग का उन शाखाओं से ख़ात्मा हो जाता है और एक स्वतंत्र पूँजीपति वर्ग के रूप में उनका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

यदि उत्पादन सम्बन्ध और राज्य का चरित्र अपरिवर्तित रहते हैं, तो कृषि और अन्य सेक्टरों में प्राक्-पूँजीवादी सम्बन्ध पुनरुत्पादित होंगे। वीक्स और डोर यह मानते हैं कि यह अभी शोध का विषय है कि क्या विदेशी पूँजी कृषि में प्राक्-पूँजीवादी सम्बन्धों को भी तोड़ती है। इतिहास दिखाता है कि भारत जैसे देशों में राजनीतिक रूप से स्वतन्त्र बुर्जुआ वर्ग ने पूँजीवादी विकास का एक विशेष रास्ता चुना, जिन्होंने विदेशी पूँजी निवेश और आयात प्रतिस्थापन की नीतियों के मिश्रण से और साथ ही साथ अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा का लाभ उठाकर अपने प्रतिक्रियावादी बुर्जुआ राष्ट्रीय हितों को सन्तुलित करते हुए एक विशेष क़िस्म का ही सही परन्तु पूँजीवादी विकास किया है। हम इस विषय पर यहाँ विस्तार से बात नहीं कर सकते हैं। लेकिन इतना तो तय है कि कुछ मामूली दोषों के बावजूद वीक्स और डोर ने साम्राज्यवाद की मार्क्सवादी अवस्थिति की काफ़ी हद तक सफलतापूर्वक पुनर्प्रस्तुति की है।

एक अन्य राजनीतिक अर्थशास्त्री जो विदेशी व्यापार और अन्तरराष्ट्रीय विनिमय का मार्क्सवादी सिद्धान्त की पुनर्प्रस्तुति करते हैं और परिधिगत देशों में अल्पविकास के मूल को दिखाते हैं, वे हैं अनवर शेख। शेख तुलनात्मक लागत की रिकार्डियन अवधारणा का खण्डन करने से शुरुआत करते हैं जिसकी दलील यह है कि अन्तरराष्ट्रीय व्यापार सबके लिए लाभदायक होता है। शेख 'मोनोपोली कैपिटल' स्कूल के 'इज़ारेदार पूँजी' (प्रतिस्पर्द्धा के निषेध के रूप में) और 'अधिशेष हड़पने के सिद्धान्त' की अवधारणाओं की विशेष रूप से आलोचना करते हैं।

वे विदेशी व्यापार और अन्तरराष्ट्रीय विनिमय के मार्क्सवादी सिद्धान्त की पुनर्प्रस्तुति करते हैं जो यह दिखाता है कि अधिक उन्नत उत्पादक शक्तियों और उन्नत पूँजीवादी सम्बन्धों वाले देशों को माल के निर्यात के दौर में और साथ ही साथ मुद्रा पूँजी व उत्पादक पूँजी के निर्यात के दौर में एक निरपेक्ष लाभ मिलेगा। वास्तव में मुद्रा पूँजी और उत्पादक पूँजी का निर्यात मालों के निर्यात की प्रधानता के दौर में पैदा हुए निरपेक्ष लाभ से ही अस्तित्व में आता है।

जहाँ एक ओर शेख 'मोनोपोली कैपिटिलिज्म' स्कूल और 'डिपेन्डेंसी' थियरी की नव-स्मिथियन अवधारणा का खण्डन करते हैं वहीं दूसरी ओर वे एमैनुएल और सामिर अमीन जैसे 'असमान विनिमय' के सिद्धान्तकारों की नव-रिकार्डियन मान्यताओं को भी खारिज करते हैं। वे यह मानते हैं कि विकसित देशों में मुनाफ़े की उच्च दर और उन्नत प्रौद्योगिकी को स्थिर मान लेने पर पिछड़े देशों की ओर विदेशी पूँजी निवेशों को आकर्षित करने का मुख्य कारक सस्ता श्रम या मज़दूरी है। पहली बात, विश्व बाज़ार के लिए उत्पादन करने वाले इन देशों के निर्यात सेक्टर पर विदेशी निवेश धावा बोलता है। घरेलू बाज़ार के लिए उत्पादन करने वाले सेक्टरों को केवल तभी निशाना बनाया जाता है जब एक ही माल को अपने मूल राष्ट्र में उत्पादन करने के मुकाबले वहाँ मुनाफ़े की दर अधिक होती है। पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं के इन सेक्टरों में विदेशी पूँजियों के बीच बढ़ती प्रतिस्पर्द्धा का परिणाम कीमतों के कम होने के रूप में सामने आएगा जिससे अतिरिक्त मुनाफ़ा कम हो जाएगा।

इस प्रक्रिया में, इन सेक्टरों से स्थानीय पूँजियाँ बाहर हो जाएँगी और वे उन सेक्टरों की ओर प्रवाहित होंगी जो विदेशी पूँजी द्वारा नहीं भेदे गए हैं या जो विदेशी पूँजी के एकाधिकार वाले सेक्टर की सेवा के लिए अस्तित्व में आए हैं। विदेशी पूँजियाँ अपने मूल राष्ट्र में अपने प्रतिस्पर्द्धियों को पीछे छोड़ने के लिए भी पिछड़े देशों में किए गए निवेशों का इस्तेमाल करती हैं।

प्रत्यक्ष विदेशी निवेशों का पिछड़े देशों की अर्थव्यवस्था पर दोहरा प्रभाव पड़ता है। एक ओर वे उनके निर्यातों के मूल्य को कम करते हैं जिसका नतीजा उनके लिए व्यापार की प्रतिकूल शर्तों के रूप में सामने आता है। दूसरी ओर विकसित देशों से इन देशों की ओर उत्पादन स्थानान्तरित करने से अल्पविकसित देशों का व्यापार सन्तुलन सुधरेगा और उनके मज़दूरों के लिए रोज़गार के नए अवसर पैदा होंगे। परन्तु यह सकारात्मक प्रभाव मुनाफ़े के देश प्रत्यावर्तन करने के रूप में भविष्य के पूँजी बहिर्गमन के रूप में प्रति-सन्तुलित हो जाएगा। शेख यह दलील देते हैं:

''वह ऐसा केवल पूँजी के बहिर्गमन (रीपैट्रिएटेड मुनाफ़े के रूप में हस्तान्तरित किया गया बेशी मूल्य), व्यापार की शर्तो के कम होने और बढ़ते विदेशी प्रभुत्व की कीमत पर ही करता है। इसलिए अन्तरराष्ट्रीय असमानता का निषेध करने की बजाय विदेशी निवेश कमज़ोर पर ताक़तवर की पकड़ को मजबूत करता है – न सिर्फ़ इज़ारेदारी और राज्य की शक्ति के ज़रिये, बल्कि स्वयं ''मुक्त'' प्रतिस्पर्द्धा के ज़रिये भी। (Anwar Shaikh, 'The Laws of International Exchange', in *Growth, Profits and Property,* Edward J. Nell (ed.), Cambridge University Press, 1984, p. 231)

परन्तु शेख 'इज़ारेदारी' और 'साम्राज्यवाद' की अवधारणा के प्रति बेहद सशंकित हैं। वे दलील देते हैं कि पूँजीवाद के जन्मकाल से ही उसमें 'साम्राज्यवाद' अन्तर्निहित है क्योंकि वह अपनी प्रकृति से ही विस्तारवादी होता है। शेख के अनुसार साम्राज्यवाद को 'इज़ारेदारी' और 'पूँजी के निर्यात' से जोड़ना ग़लत है। पिछड़े देशों पर प्रभुत्व की शुरुआत मुक्त व्यापार और माल के निर्यात के समय से ही शुरू हो चुकी थी।

फिर भी शेख यह मानते हैं कि वित्तीय इज़ारेदारियों और पूँजी के निर्यात के अस्तित्व में आने से साम्राज्यवादी देशों और अन्य देशों के बीच के सम्बन्धों एवं साम्राज्यवादी देशों के बीच के सम्बन्धों में गुणात्मक बदलाव आता है जो अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिसपर्द्धा के रूप में अभिव्यक्त होता है। परन्तु वे कहते हैं कि इस दौर को साम्राज्यवादी कहना और पहले के दौरों को कुछ और कहने से ग़लतफ़हमी होती है क्योंकि शेखक के अनुसार साम्राज्यवाद पूँजीवाद में अन्तर्निहित है। हालाँकि क़रीब से देखने पर हम यह मान सकते हैं कि शेख इस बात से सहमत होंगे कि मुक्त प्रतिस्पर्द्धा वाले पूँजीवाद से इज़ारेदारी (प्रतिस्पर्द्धा का निषेध नहीं बल्कि उसके तीव्र होना) की अवस्था में पहुँचने के दौरान 'साम्राज्यवाद' (जो उनके अनुसार महज़ अन्तरराष्ट्रीय विनिमय के सम्बन्ध है जिनमें पूँजीवाद के जन्मकाल से ही एक असमान सम्बन्ध और असमान विकास निहित है) अलग-अलग रूप धारण करता है। एक प्रश्न जिस पर शेख स्पष्ट नहीं हैं वह यह है कि उत्पादन के हर क्षेत्र में पूँजीपतियों की घटती संख्या प्रतिस्पर्द्धा के चरित्र को किसी भी रूप में प्रभावित करती है या नहीं। यदि हम निरन्तर जारी पूँजी के सान्द्रण और केन्द्रीयकरण की वजह से प्रतिस्पर्द्धा के स्वरूप में होने वाले परिवर्तनों को स्वीकार नहीं करेंगे तो पूँजी संचय की समूची प्रक्रिया एक सपाट और क्रमिक विकास वाली प्रक्रिया बन कर रह जाएगी। ऐसे प्रेक्षण से पूँजीवाद की एक अनैतिहासिक तस्वीर बनेगी जिसका असर कभी-कभी श्रेष्ठतम श्रेणी के राजनीतिक अर्थशास्त्रियों पर भी होता है।

अन्तरराष्ट्रीय व्यापार, इज़ारेदारी के निर्माण, प्रतिस्पर्द्धा के नियम और संचय के नियम की क्लासिकीय मार्क्सवादी अवस्थितियों की इन पुनर्प्रस्तुतियों की कमी यह है कि वे शुद्ध रूप से आर्थिक पुनर्प्रस्तुतियाँ हैं और उनमें राजनीतिक पहलू गायब हैं। फिर भी वे वि.स.प. की हर प्रकार की उन नव-स्मिथियन, नव-रिकार्डियन, अल्पउपभोगवादी चौखटों के ग़ैर-मार्क्सवादी चरित्र को दर्शाने में प्रभावी हैं जो इज़ारेदार पूँजी, साम्राज्यवाद और अल्पविकास के मार्क्सवादी सिद्धान्तों का छद्म वेष धारण किए हुए थीं। इसलिए ब्रेनर (जिन पर हमने चर्चा नहीं की), वीक्स और डोर, तथा अनवर शेख साम्राज्यवाद की मार्क्सवादी-लेनिनवादी अवस्थिति के विकास पर सोचने की प्रेरणा के लिए महत्वपूर्ण हैं।

अब हम इक्कीसवीं सदी में 'नए साम्राज्यवाद' के सिद्धान्तकारों, विशेषकर डेविड हार्वी, एलेन मीक्सिन्स वुड, कैलिनिकोस आदि, के बारे में एक संक्षिप्त चर्चा शुरू कर सकते हैं।

'नए साम्राज्यवाद' के सिद्धान्त: हार्वी, वुड, कैलिनिकोस, स्मिथ

जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया था, अकादमिक जगत में नए-नए जुमले उछालने और 'फिर से आग का आविष्कार करने' और नई खोज का दावा करने का फितूर सवार रहता है। इस बात की पुष्टि 'नए साम्राज्यवाद' के सिद्धान्तकार सबसे बेहतर ढंग से करते हैं। और शायद इस प्रवृत्ति का सबसे प्रातिनिधिक उदाहरण डेविड हार्वी की रचना *'द न्यू इम्पीरियलिज्म'* है।

यह एक महत्वाकांक्षी रचना है जो 21वीं सदी में साम्राज्यवाद की कार्यप्रणाली को समझने का दावा करती है। इस रचना में हार्वी यह दलील देते हैं कि नए साम्राज्यवाद को राजनीतिक शक्ति और पूँजी की शक्ति के स्वायत्त परन्तु ऐतिहासिक रूप से अन्तर्सम्बन्धित तर्कों को आत्मसात करके ही समझा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, राज्य के स्वायत्त टेरिटोरियल तर्क और पूँजी के तर्क का द्वंद्व। हार्वी यह दावा करते हैं कि नए साम्राज्यवाद का उनकी समझदारी निम्न पर आधारित है:

> ''राज्य और साम्राज्य की राजनीति एवं दिक् व काल में पूँजी संचय की आणविक गति के द्वंद्वात्मक सम्बन्ध'' (David Harvey, *The New Imperialism,* Oxford University Press, 2003, p. 89). (अनुवाद हमारा)

अत: 'आर्थिक' ('पूँजी की गति') एवं 'राजनीतिक' ('राज्य और साम्राज्य की राजनीति') को सामाजिक पूर्णता में स्वायत्त और स्वतन्त्र क्षणों के रूप एक ही स्तर पर रखा गया है। उनके अनुसार,

> ''बुनियादी बिन्दु है सत्ता के 'टेरिटोरियल' और पूँजीगत तर्कों को एक दूसरे से अलग देखना।'' (*वही,* p. 29)

हार्वी के अनुसार इसका कारण यह है कि राज्य का तर्क नियमत: टेरिटोरियल सरहदों तक सीमित है, जबकि ऐसा पूँजी के तर्क पर लागू नहीं होता। दूसरे, राज्य और पूँजी के एजेंट या पूँजी के धड़े अलग और स्वायत्त निकाय हैं जिनकी कार्रवाइयाँ कभी-कभी जटिल और विरोधाभासी तरीके से एक-दूसरे से गुथी-बुनी हो सकती हैं।

पूँजीपति पूँजी का अनन्त काल तक पूँजी का संचय करना चाहेगा, जबकि राजनेता अन्य राज्यों के बरक्स अपने राज्य के लिए अधिक शक्ति चाहेगा। वे यह दावा करते हैं कि राज्य टेरिटरी पर नियन्त्रण बढ़ाने को अपना अन्तिम लक्ष्य मानेगा। संक्षेप में, राज्य के तर्क और पूँजी के तर्क में एक तनाव है।

इस तर्क पर वेबेरियन समाजशास्त्र और शुपेटेरियन दलीलों का सुस्पष्ट प्रभाव है। ब्रेनर ने सही ही इंगित किया है कि ऐसी समझ साम्राज्यवाद पर अरेंट के तर्क पर आधारित है, न कि लेनिन के तर्क पर। वैसे भी हार्वी का लेनिन के विश्लेषण के प्रति कोई सम्मान नहीं है। उनकी दलील यह है कि लेनिन की पुस्तक *साम्राज्यवाद* सैद्धान्तिक दस्तावेज़ नहीं बल्कि पर्चेबाजी है (!) और यह कि साम्राज्यवाद पूँजीवाद की अन्तिम अवस्था नहीं है, बल्कि जैसाकि अरेंट ने कहा था, वह वैश्विक पूँजीवादी शासन की पहली अवस्था है। ये दोनों ही बयान साम्राज्यवाद के लेनिन के सिद्धान्त को समझने में हार्वी की कमी दिखाते हैं।

आर्थिक और राजनीतिक के अलगाव के बीच के विभाजन के बारे में हार्वी की दलील यह दिखाती है कि राज्य का उनका सिद्धान्त संगत नहीं है। उदाहरण के लिए वे हमें यह नहीं बताते हैं कि राज्य का टेरिटोरियल तर्क पूँजी के हितों से जब टकराता है तो उसका कारण क्या होता है। 1840 के दशक से लेकर अब तक का साम्राज्यवाद का उनका विस्तृत इतिहास जो दिखाता है वह इसका ठीक उलट है। नतीजतन, जैसाकि ब्रेनर ने उचित टिप्पणी की है, हार्वी राज्य के स्वायत्त टेरिटोरियल तर्क को अधर में ही छोड़ देते हैं! इसका कारण यह है कि हार्वी स्वयं इसे यथार्थ में घटित होता नहीं दिखा सकते। इसी वजह से इस प्रश्न पर हार्वी का साम्राज्यवाद के इतिहास के पूरे विश्लेषण में वे बार-बार अपनी बात खुद ही काटते हैं। हार्वी के अनुसार साम्राज्यवाद पूँजी के अतिसंचय के संकट का नतीजा है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से अमेरिकी साम्राज्यवाद और तीसरी दुनिया के देशों में उसके हस्तक्षेपों के अपने ब्योरे में हार्वी यह दलील देते हैं कि इन हस्तक्षेपों का वास्तविक लक्ष्य कम्युनिज़्म और समाजवाद तथा साथ ही रैडिकल बुर्जुआ राष्ट्रवाद (नासेर और सुकर्णो जैसे) के विस्तार को रोकना सुनिश्चित करना था।

इसका कारण है 'तीसरी दुनिया' के देशों में अन्तरराष्ट्रीय पूँजी, यानी वित्तीय अल्पतन्त्रों तथा राष्ट्रपारीय निगमों, के लिए मुक्त विचरण और मुनाफ़ा कमाने की ज़मीन तैयार करना। हार्वी के अनुसार ये हस्तक्षेप महज़ प्रभुत्व पर आधारित नहीं थे बल्कि वे अमेरिका द्वारा पूँजीवादी विश्व के स्वीकार्य नेता के रूप में अपना वर्चस्व स्थापित करने की आकांक्षा पर भी आधारित थे।

ब्रेटन वुड्स सांस्थानिक ढाँचे के ज़रिये अमेरिका ने इन देशों में रोस्तोव के ''टेक ऑफ़'' को पूँजीवादी विकास में रूपान्तरित करने में मदद करके पूँजीवादी विकास को बढ़ावा दिया। लेकिन साथ ही साथ अमेरिका जो कभी 'राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों का संरक्षक' (!?) था वह हर उस देश का उत्पीड़क बन गया जिसने *नरम रूप में ही सही लेकिन ग़ैर-पूँजीवादी विकास* का रास्ता अपनाया। (इसका मतलब क्या है!?)। लेकिन यह सैद्धान्तिकरण एक बार फिर हार्वी द्वारा दिये गए विवरण से मेल नहीं खाता है। वास्तव में उनका विवरण यह दिखाता है कि अमेरिका की भूमिका हमेशा से तीसरी दुनिया में साम्राज्यवादी प्रभुत्व स्थापित करने की रही है और केवल उन्नत पूँजीवादी दुनिया (यूरोप, जापान) में ही उसने एक स्वीकार्य नेता के रूप में अपने वर्चस्व की स्थिति क़ायम करने की कोशिश की।

हार्वी के अनुसार 'नए साम्राज्यवाद' का समय 1973 के संकट के बाद से शुरू होता है। उनके अनुसार इसका कारण अमेरिका में संगठित श्रम के दबाव की वजह से मज़दूरी का बढ़ता जाना, राज्य द्वारा किया गया सामाजिक व्यय और जर्मनी व जापान की ओर से बढ़ती प्रतिस्पर्द्धा था। परन्तु हार्वी की ''प्रॉफ़िट स्क्वीज़'' की थीसिस वास्तविक आँकड़ों के सामने धराशायी हो जाती है।

वास्तव में 1973 में शुरू हुए संकट के ठीक पहले मज़दूरियाँ नहीं बढ़ रही थीं। इसके अतिरिक्त, यह संकट सिर्फ़ अमेरिकी अर्थव्यवस्था में नहीं था बल्कि एक वैश्विक संकट था। वैश्विक स्तर पर व्याख्या करना तो दूर हार्वी द्वारा उल्लिखित कारक अमेरिकी अर्थव्यवस्था के संकट तक की व्याख्या नहीं कर सकते।

सामाजिक व्यय बजट घाटे के लिए जिम्मेदार नहीं था क्योंकि वियतनाम युद्ध समाप्त हो चुका था और सामाजिक व्यय राज्य बजट पर उतना बड़ा बोझ नहीं था। जर्मनी और जापान द्वारा दी जा रही प्रतिस्पर्द्धा संकट के समय अपने आप में बहुत प्रभावी नहीं थी।

जैसाकि कई मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्रियों ने दिखाया है, संकट का असल कारण मुनाफ़े की गिरती दर की प्रवृत्ति के नियम कारण मुनाफ़े का संकट था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यूरोप और जापान के पुनर्निर्माण के कारण पैदा हुए लाभप्रद निवेश के नए अवसरों के आधार पर शुरू हुए लम्बा तेज़ी का दौर 1960 के दशक के अन्त तक संतृप्तता के बिन्दु पर पहुँच गया। परन्तु हार्वी संकट के वास्तविक कारण नहीं जान पाते हैं।

जब 1973 का संकट शुरू हुआ तो नवउदारवाद की नीतियाँ और 'नया साम्राज्यवाद' इस संकट की प्रतिक्रिया में शुरू हुआ। इस दौर में संचय की मुख्य रणनीति को हार्वी 'बेदखली के ज़रिये संचय' का नाम देते हैं। इस श्रेणी के अन्तर्गत पूँजी की ओर से राज्य द्वारा सम्पन्न की जाने वाली तमाम गतिविधियाँ आती हैं। इसमें मुनाफ़ा कमाने के नए अवसरों का खुलना या पूँजी की भूख शान्त करने के लिए पूँजीवाद के

‘इतर’ का उत्पादन शामिल है जिसकी आवश्यकता बकौल लग्ज़ेम्बर्ग पूँजी को हमेशा रहती है। इसमें राज्य की सम्पत्ति का निजीकरण करके राज्य के स्वामित्व वाले संसाधनों को बाज़ार के लिए उपलब्ध कराना शामिल है।

राज्य के वर्ग चरित्र को ध्यान में रखे बिना राज्य की सम्पत्ति को जनता की सम्पत्ति समझना बुनियादी तौर पर दोषपूर्ण अवधारणा है। इसके अतिरिक्त, यह मान लेना ग़लत है कि राज्य की सम्पत्ति बाज़ार में मुनाफ़ा कमाने के लिए नहीं है। अधिकांश पूँजीवादी देशों में राज्य स्वयं एक बड़ा इज़ारेदार पूँजीपति होता है और हरसम्भव तरीके से राज्य के स्वामित्व वाले उद्योगों के ज़रिये मुनाफ़ा कमाता है।

इसके बाद हार्वी कई सारी चीज़ों को ‘बेदखली के ज़रिये संचय’ में शामिल करते हैं, उदाहरण के लिए, साम्राज्यवादी देशों द्वारा क्षेत्रीय और स्थानीय संकट में पूँजी और श्रम का अवमूल्यन (1997 का पूर्वी एशिया का संकट जो हार्वी के अनुसार अमेरिकी साम्राज्यवाद की साज़िश का नतीजा था), सामूहिक क्षेत्रों का अधिग्रहण, प्रकृति की लूटपाट, कम्पनी के दीवालिया होने पर मज़दूरों के पेंशन का छीन लिया जाना (जैसे एनरॉन मज़दूरों का मामला), बाज़ार के लिए उत्पादन करने वाली पारिवारिक खेतों की तबाही और एग्री-बिज़नेस कम्पनियों का मुनाफ़ा, वित्तीयकरण और सट्टेबाजी के ज़रिये आम लोगों की सम्पदा का हस्तान्तरण, मसलन बहुत अधिक ब्याज़ पर ऋण लेने की वजह से मज़दूरों के घरों का छीना जाना।

जैसा कि स्पष्ट है, ‘बेदखली के ज़रिये संचय’ की अवधारणा हर प्रकार की बेदखली (जिनमें से कुछ निश्चित ही उन्नत पूँजीवादी संचय की वजह से होता है) की एक सूची बनने की वजह से अपना पूरा मतलब खो बैठती है। यह हार्वी के अव्यवस्थित सैद्धान्तिकरण के स्तर को दिखाता है और इसको पढ़कर हमें लेनिनवादी पर्चेबाजी की लालसा होती है!

सबसे बड़ी विडम्बना तो यह है कि हार्वी यह दावा करते हैं कि मार्क्स का यह सोचना ग़लत था कि आदिम संचय एक ऐसी प्रक्रिया है जो पूँजीवाद के शुरुआती दौर तक सीमित थी। सबसे पहली बात, मार्क्स ने ऐसा कभी नहीं कहा था और मार्क्स ने स्पष्ट रूप से समझा था और उन्होंने दरअसल इस तथ्य के बारे में लिखा था कि पूँजीवाद के कुल विकास में आदिम संचय और उन्नत पूँजीवादी संचय एक साथ अस्तित्वमान होते हैं, हालाँकि उन्नत पूँजीवादी संचय प्रभावी प्रवृत्ति होती है।

यह आसानी से सिद्ध किया जा सकता है कि आज संचय का मुख्य स्रोत उन्नत पूँजीवादी संचय है। इसके अतिरिक्त मार्क्स के अनुसार, आदिम पूँजी संचय की अवधारणा लाभप्रद निवेश के नए अवसर तैयार करने के लिए केवल लोगों को उनकी सम्पत्ति से बेदखल करने के लिए बल और ज़ोर-ज़बर्दस्ती की भूमिका के लिए ही नहीं महत्वपूर्ण है। मार्क्स के अनुसार इस अवधारणा का मुख्य प्रकार्य यह है कि यह कार्य पूँजी-सम्बन्ध का संघटक है, यानी एक ओर उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के बोझ से मुक्त और अपनी श्रम शक्ति बेचने के लिए ‘‘मुक्त’’ उज़रती मज़दूरों का वर्ग और दूसरी ओर उत्पादन के साधनों के स्वामित्व पर एकाधिकार रखने वाले पूँजीपतियों के वर्ग का निर्माण।

हार्वी यहाँ जिस चीज़ की बात कर रहे हैं वो एडम स्मिथ के ‘मूल संचय’ और उन्न्त पूँजीवादी संचय की प्रक्रियाओं का मिश्रण है। हार्वी के अनुसार नया साम्राज्यवाद विशेष रूप से ‘बेदखली के ज़रिये संचय’ पर आधारित है जिसमें जैसा कि हमने देखा वे संचय की पद्धतियों के पृथक संग्रह शामिल करते हैं जिसमें कुछ आदिम संचय से सम्बन्धित हैं जबकि अन्य पूँजी संचय की उन्नत पद्धतियों से सम्बन्धित है जो नवउदारवाद के दौर में विशेष रूप से तीव्र हो रही हैं।

इराक़ पर जॉर्ज बुश जू. द्वारा किए गए हमले की व्याख्या करते हुए हार्वी यह दलील देते हैं कि उसके वास्तविक कारणों की व्याख्या आर्थिक की बजाय भू-राजनीतिक कारकों द्वारा की जा जाती है। इराक़ पर हमले का वास्तविक कारण तेल के मुख्य स्रोतों पर नियन्त्रण की आकांक्षा थी जो वर्तमान दौर में विश्व प्रभुत्व के केन्द्र पर है। हार्वी यह दलील देते हैं,

> ‘‘जो कोई भी मध्य-पूर्व का नियन्त्रण करता है वह वैश्विक तेल के मुहाने पर नियन्त्रण करता है और जो कोई भी वैश्विक तेल के मुहाने पर नियन्त्रण रखता है वह वैश्विक अर्थव्यवस्था का नेतृत्व करेगा। (*वही*, p. 19)

दरअसल अमेरिका अपने आर्थिक ढलान को रोकने के लिए मध्य-पूर्व पर नियन्त्रण करना चाहता है ताकि अमेरिका

> ''अगले पचास वर्षों तक वैश्विक अर्थव्यवस्था पर प्रभावी नियन्त्रण कर सके...अमेरिका के लिए प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त करने और अपनी वर्चस्ववादी स्थिति क़ायम करने के लिए उन मुख्य आर्थिक संसाधनों के दामों, परिस्थितियों और वितरण पर नियन्त्रण करने के से बेहतर और कोई रास्ता नहीं हो सकता जिन पर उसके प्रतिस्पर्द्धी निर्भर रहते हैं?'' (*वहीं,* p. 25)

परन्तु कई अध्येताओं ने यह दिखाया है कि अगर अमेरिका मध्य-पूर्व के तेल पर अपना वर्चस्व स्थापित करने में सफल हो पाता है तो उसका लाभ अमेरिकी राज्य की बजाय तेल उद्योग को होगा। क्रिश्चियन फ़ुक्स (Critical Globalization Studies: An Empirical and Theoretical Analysis of the New Imperialism, *Science and Society,* Vol. 74, No. 2, April 2010) ने आनुभविक आँकड़ों के साथ यह दिखाया है कि इराक़ पर क़ब्ज़े का मुख्य लाभ न सिर्फ़ अमेरिका के बल्कि यूरोप और ख़ासकर ब्रिटेन के तेल निगमों को हुआ।

दूसरी बात, अमेरिका इस क़ब्ज़े की बदौलत तेल की क़ीमतों को नियन्त्रित नहीं कर सकता है। वह ऐसा कभी नहीं कर पाया है। तीसरी बात, वह अपने प्रतिस्पर्द्धियों को तेल देने से इनकार नहीं कर सकता क्योंकि जैसाकि ब्रेनर कहते हैं उसका अर्थ होगा युद्ध। यदि अमेरिका ऐसे युद्ध में, मान लिया जाए चीन या रूस के साथ, भागीदारी करने को इच्छुक है तो उसे इराक़ पर हमला करने की आवश्यकता नहीं है। वह ऐसा इराक़ पर हमला किए बिना ही कर सकता है।

इन गम्भीर समस्याओं के अतिरिक्त, हार्वी कभी-कभी इस आशय की बात भी करते हैं कि पिछले 30 वर्षों में मूल्य का हस्तान्तरण उलट गया है, हालाँकि वे मानते हैं कि सस्ता श्रम और कच्चे माल के दोहन के लिए तीसरी दुनिया की ओर उद्योगों का स्थानान्तरण अभूतपूर्व रूप से बढ़ा है।

ये दोनों परस्पर विरोधी दलीलें हैं। पहले का आशय यह है कि अब 'ग्लोबल नॉर्थ' भुक्तभोगी हो गया है क्योंकि मूल्य उसकी ओर से 'ग्लोबल साउथ' की ओर प्रवाहित हो रहा है। दूसरी दलील का स्पष्ट अर्थ यह है कि 'ग्लोबल साउथ' के सस्ते श्रम और कच्चे माल का 'ग्लोबल नॉर्थ' द्वारा शोषण किया जा रहा है जिसकी वजह से 'ग्लोबल साउथ' की ओर से 'ग्लोबल नॉर्थ' की ओर मूल्य का स्थानान्तरण हो रहा है।

अमेरिका से उत्पादन के विकासशील देशों की ओर स्थानान्तरण और उसके नतीजे के रूप में 'वि-औद्योगिकीकरण' के लिए हार्वी वित्तीय पूँजी को कोसते हैं, जबकि इस स्थानान्तरण का वास्तविक कारण मैन्युफैक्चरिंग क्षेत्र की लाभप्रदता का संकट था, हालाँकि उसमें वित्तीय पूँजी की भी सहायक भूमिका थी। समाधान के तौर पर जो कुछ हार्वी सुझाते हैं वह न सिर्फ़ अपने सुधारवाद और अन्धराष्ट्रवाद के आश्चर्यजनक है बल्कि काउत्स्की को खुले रूप में उद्धृत करने के लिए भी:

> ''किसी भी पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के नियमों के भीतर इस समस्या का एकमात्र, हालाँकि अस्थायी, उत्तर एक तरह की नई 'न्यू डील' है जिसकी वैश्विक पहुँच है।
>
> इसका अर्थ है पूँजी परिचलन और संचय के तर्क को उसके नव-उदारवादी जंजीरों से मुक्त करना, पहले से कहीं अधिक हस्तक्षेपवादी और पुनर्वितरण के आधार पर राज्य का पुनर्सूत्रीकरण, वित्तीय पूँजी की सट्टाबाजी की शक्ति पर नियन्त्रण और अल्पतंत्रों और इज़ारेदारियों की अद्भुत ताक़त (विशेष रूप से सैन्य-औद्योगिक कॉम्प्लेक्स) को विकेन्द्रीकृत करना लोकतांत्रिक रूप से नियन्त्रण करना ताकि अन्तरराष्ट्रीय व्यापार की शर्तों से लेकर हम मीडिया में जो हम देखते हैं, पढ़ते हैं, सुनते हैं उसकी हर चीज़ को निर्देशित किया जा सके।

इसका असर एक अधिक कल्याणकारी न्यू डील साम्राज्यवाद की ओर वापसी होगा, बेहतर यह होगा कि वह पूँजीवादी शक्तियों के एक तरह के गठबन्धन के ज़रिये हो जिसकी कल्पना काउत्स्की ने बहुत पहले की थी:

...निश्चित ही भविष्य में कहीं ज़्यादा रैडिकल समाधान आने वाले हैं, लेकिन आज के घरेलू और अन्तरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर अमेरिका और यूरोप के नेतृत्व में उसके ख़िलाफ़ खड़ी भयानक वर्ग शक्तियों और विशेष हितों के मद्देनज़र एक नए 'न्यू डील' का निर्माण मौजूदा conjuncture में लड़ने के लिए पर्याप्त है।''(*वही,* p. 209-10)

तो इस प्रकार हार्वी अपने राजनीतिक निर्वाण को प्राप्त होते है! शेष विश्व के लिए 'न्यू डील' की तरह का उदार साम्राज्यवाद और साम्राज्यवादी जगत के लिए 'न्यू-डील' की तरह का कल्याणवाद! क्यों? क्योंकि नवउदारवादी आम सहमति इसकी विरोधी है। अत: मार्क्सवादियों को वाम कीन्सियाई कल्याणवाद के लिए लड़ना चाहिए क्योंकि नवउदारवादी रूढ़ितन्त्र इसका विरोधी है। यह सब कुछ यथार्थवादी होने के नाम पर किया जा रहा है क्योंकि 'मौजूदा संधि बिन्दु' पर यही एकमात्र सम्भावित विकल्प है। हालाँकि प्रभात पटनायक और उत्सा पटनायक बिल्कुल अलग ढंग से दलील देते हैं, लेकिन उनके समाधान पद्धति के रूप में हार्वी के सिद्धान्त से मिलते'-जुलते हैं; स्वयं हार्वी का कथन उधार लेते हुए यह कहा जा सकता है कि एकमात्र अन्तर उनके ''भू-राजनीतिक स्थानों'' का है!

एलेन मीक्सिन्स वुड अपनी पुस्तक *Empire of Capital* में *'*नए साम्राज्यवाद*'* के बारे में एक बिल्कुल अलग आख्यान प्रस्तुत करती हैं। उनके लिए *'*नया साम्राज्यवाद*'* साम्राज्यवाद का वह रूप है जो शब्द द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उभरा जिसमें अमेरिका आर्थिक व राजनीतिक-सैन्य अर्थों में वर्चस्ववादी बना। उनके लिए नया साम्राज्यवाद साम्राज्यवाद के अन्य रूपों (जिसमें 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध और दूसरे विश्वयुद्ध के बीच में उभरा साम्राज्यवाद भी शामिल है) के विपरीत मूलत: एक 'आर्थिक सम्बन्ध' है जिसमें आर्थिक और राजनीतिक एक दूसरे को प्रतीतिगत ढंग से काटते हैं। परन्तु, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पूँजीवाद के सही अर्थों में वैश्विक व्यवस्था में बनने के साथ ही राजनीतिक और आर्थिक के बीच फासला बन गया है, हालाँकि यह एक नए तरह का राजनीतिक-सैन्य वर्चस्व है जो अमेरिकी पूँजी के संरक्षण में पूँजी के वैश्विक प्रभुत्व की परिस्थिति तैयार कर रही है। अत: 'नया साम्राज्यवाद' पूर्णत: 'आर्थिक सम्बन्ध' है, इसको स्थापित करने ओर क़ायम रखने के लिए पाशविक बल की आवश्यकता है।

वुड की दलील यह है कि पूँजी को एक स्वायत्त निकाय के रूप में समझा जाना चाहिए जो हालाँकि हमेशा स्वामित्व के सन्दर्भ में राष्ट्रीय मूल बनाए रखती है, फिर भी वह राष्ट्रीय सरहदों के पार विस्तारित हो सकती है। व्यक्तिगत पूँजी अपने राष्ट्रीय मूल से दूर जाती प्रतीत होती है और एक अन्तरराष्ट्रीय स्थान में विस्तारित हो रही है जो कई राष्ट्र-राज्यों से मिलकर बना है। परन्तु वुड यह नहीं देख पातीं कि राष्ट्रीय सरहदों को पार करने वाली पूँजी जिस देश में प्रवेश करती है उसमें मौजूद परिस्थितियों के आधार पर संचय की अलग-अलग प्रक्रियाओं में शामिल होती है। बेशी मूल्य/मुनाफ़ा अन्तत: मूल स्वामी को भेजा जाता है या नहीं इससे स्वतन्त्र इसमें हरेक देश में वर्गीय शोषण की अलग-अलग परिस्थितियाँ शामिल हैं। अत: वुड के अनुसार यदि विकसित पूँजीवादी देशों की पूँजी अपने मूल राष्ट्र की सरहदों के पार गुज़रती है तो राष्ट्र राज्य को ऐसे *राजनीतिक साम्राज्यवाद* का सहारा लेना ज़रूरी हो जाता है जो विकसित पूँजीवाद के लिए उचित हो और इस प्रकार वह विशिष्ट राजनीतिक और वैधिक शर्तों केा को हासिल करती है जिसके तहत उस पूँजी का संचय आगे बढ़ सकता है। वुड दलील देती हैं:

''तो फिर वास्तव में अस्तित्वमान भूमण्डलीकरण ('नया साम्राज्यवाद' – लेखक) का अर्थ है अधीनस्थ अर्थव्यवस्थाओं का खुलना और साम्राज्यी पूँजी के सापेक्ष उनकी कमज़ोरी, जबकि साम्राज्यी अर्थव्यवस्था यथासंभव विपरीत प्रभावों से सुरक्षित है। (Ellen Meiksins Wood, *Empire of Capital,* Verso, London, 2005, p. 134)

वुड के अनुसार चूँकि 'नया साम्राज्यवाद' एक प्रत्यक्ष आर्थिक सम्बन्ध है इसलिए इस प्रकार के प्रभुत्व के लिए कई राष्ट्र-राज्यों के समूह की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक है। वे कहती हैं:

‘‘ ‘भूमण्डलीकृत’ दुनिया पहले की तुलना में कहीं ज़्यादा राष्ट्र-राज्यों की दुनिया है। नए साम्राज्यवाद को हम भूमण्डलीकरण ठीक इसीलिए कहते हैं क्योंकि यह एक व्यापक आर्थिक वर्चस्व पर निर्भर है जिसका फैलाव राज्य की ‘टेरिटोरियल’ सरहदों या राजनीतिक प्रभुत्व से परे है, यह साम्राज्यवाद का एक ऐसा रूप है जो कई राज्यों की व्यवस्था पर किसी भी अन्य की तुलना में अधिक निर्भर है...

‘‘वैश्विक पूँजीवाद की दुनिया में साम्राज्यी वर्चस्व का अर्थ है प्रतिस्पर्द्धी अर्थव्यवस्थाओं और राज्यों पर उनसे युद्ध किये बिना नियन्त्रण करना’’

(*वही,* p. 154, 157)

वुड के अनुसार, अतीत के साम्राज्यवादी युद्धों की तुलना में आज के दौर के युद्ध अलग प्रकार के हैं। यह साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच व्यापक तनाव नहीं है, बल्कि अमेरिका के नए साम्राज्य की सैन्य शक्ति पर आधारित ‘शक्ति का एक स्थायी ख़तरा’ है। साम्राज्यवादी पूँजी को इस प्रकार के स्थायी ख़तरे और युद्ध की सम्भावना की आवश्यकता ‘कई राष्ट्र राज्यों’ की अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था पर अपना वर्चस्व क़ायम करने के लिए होती है। इसलिए, ‘नए साम्राज्यवाद’ की एक महत्वपूर्ण अभिलाक्षणिकता एक ऐसा युद्ध है जिसका कोई कालिक लक्ष्य और भौगोलिक सीमा या विशिष्ट लक्ष्य नहीं है। इसकी विशेषता है: ख़तरा आने से पहले ही सैन्य हमला और अमेरिकी साम्राज्य के संरक्षण में सार्वभौमिक पूँजीवाद का का शासन। अत: वुड के अनुसार इराक़ युद्ध तेल के लिए नहीं बल्कि अमेरिका के वैश्विक वर्चस्व को स्थापित करने के लिए था। इस प्रकार, वुड के अनुसार ‘नए साम्राज्यवाद’ का अर्थ है अमेरिका का एकपक्षीय वर्चस्व। वे दलील देती हैं, ‘‘सभी मामलों में प्रमुख उद्देश्य कई राज्यों की व्यवस्था पर अमेरिकी प्रभुत्व को दिखाना और सुदृढ़ करना है’’ (*वही,* p. 167)

वर्तमान साम्राज्यवाद की कुछ वास्तविकताओं को पकड़ने के बावजूद वुड के ब्योरे के साथ दो समस्याएँ हैं: पहला, जिस तरह का एकपक्षीय अमरिकी प्रभुत्व की बात वो करती हैं उसका कोई अस्तित्व नहीं है। इराक़ और अफ़गानिस्तान युद्ध के समय या सोवियत संघ के पतन के ठीक बाद जब ऐसे एकपक्षीय अमेरिकी प्रभुत्व का दृष्टि भ्रम था उस समय भी वह सतह पर दिखने वाला यथार्थ था और उस समय भी दुनिया में अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा की सम्भावना प्रबल हो रही थी। दूसरी बात, आर्थिक और राजनीतिक कि बीच जिस तरह की विभाजक रेखा की बात वुड करती हैं वो वास्तविक नहीं है। अभी भी अमेरिकी साम्राज्यवाद या सामान्य तौर पर साम्राज्यवाद द्वारा थोपे गए युद्ध किसी ख़ास आर्थिक और भू-राजनीतिक लक्ष्य के तहत होते हैं जो एक-दूसरे से इस तरह गुथे-बुने होते हैं कि उन्हें अलग करना मुश्किल होता है। यह इराक़ और अफ़गानिस्तान पर किए गए हमले पर भी लागू होता है। वुड के विश्लेषण के साथ एक अतिरिक्त तीसरी समस्या यह है कि वह हार्वी की ही भाँति (हालाँकि उनके साथ कई बुनियादी मसलों पर वे मतभेद रखती हैं) आनुभविक रूप से बहुत कमज़ोर है या बॉब सटक्लिफ़ के शब्दों में ‘एम्पिरिको-फ़ोबिक’ है। इसकी वजह से उनका पूरा प्रयास साम्राज्यवाद के क्लासिकीय सिद्धान्तों की तरह आनुभविक शोध और तथ्यों पर आधारित सैद्धान्तिक विश्लेषण पर आधारित होने की बजाय राजनीतिक-ऐतिहासिक अटकलबाजी की क़वायद बनकर रह जाती है।

एलेक्स कैलिनिकोस की रचना *Imperialism and Global Political Economy* डेविड हार्वी से उधार लिए गए वेबेरियन और शंपेटेरियन समाजशास्त्रीय अवधारणाओं पर अत्यधिक निर्भर है। कैलिनिकोस वेबेरियन समाजशास्त्र के की के प्रभाव को खुले रूप से स्वीकार करते हुए *(*सैम गिन्डिन और लियो पैनिच की आलोचना करने हुए 2006 के एक लेख में) हार्वी के साथ सहमति जताते हैं। कैलिनिकोस के अनुसार, साम्राज्यवाद आर्थिक और भूराजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा के बीच प्रतिच्छेदन का परिणाम है।

निश्चित रूप से आर्थिक और भूराजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा 19वीं सदी के अन्त तक जाकर ही एक-दूसरे से मिलनी शुरू हुई, यानी वह दौर जिसके बारे में हॉबसन, लेनिन, हिल्फ़र्डिंग और बुखारिन लिख रहे थे। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से पहले भूराजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा से अलग हुआ करती थी। दूसरे शब्दों में, सामन्तवाद से पूँजीवाद के संक्रमण के दौरान और पूँजीवाद की आरम्भिक अवस्थाओं में जब पूँजीवादी राज्य में सामन्ती तत्व शेष थे तब भूराजनीतिक और आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा के बीच का अलगाव जारी था।

परन्तु ऐसी दलील देना सही नहीं लगता कि उस दौर में सामन्ती तत्वों की जारी रहने की वजह से राजनीति का आयाम आर्थिक आधार से पूरी तरह अलग था। सच तो यह है कि आरम्भिक अवस्थाओं में पूँजीवाद पहले से ही राज्य के चरित्र को प्रधान तौर पर पूँजीवादी मानकर चलता है, हालाँकि बुर्जुआ वर्ग उसमें पूरी तरह से प्रभुत्वशाली भले ही न हुआ हो। आर्थिक और राजनीतिक के बीच विभाजन का कैलिनिकोस का यान्त्रिक तर्क इतिहास की रोशनी में धराशायी हो जाता है।

कैलिनिकोस यह दलील देते हैं कि साम्राज्यवाद की अलग-अलग अवस्थाएँ भूराजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा और आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा के प्रतिच्छेदन के बदलते स्वरूप पर आधारित हैं। इसका कारण यह है कि भूराजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा और आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा को अलग-अलग निहित स्वार्थ और प्रेरणा वाले राज्य के एजेंट और पूँजी के एजेंट के बीच की प्रतिस्पर्द्धा पर अपचयित किया जा सकता है। अलग-अलग सन्दर्भों में इन सम्बन्धों का ऐतिहासिक स्वरूप एजेंटों के इन दो समूहों के पुनरुत्पादन की परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

कैलिनिकोस के अनुसार, पूँजीवादी साम्राज्यवाद की दो अवस्थाएँ हैं। पहली है, 19वीं सदी के अन्त से लेकर द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ तक और दूसरी है द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से लेकर अब तक। पहले दौर में, आर्थिक और भूराजनीतिक प्रतिस्पर्द्धा ने पारस्परिक रूप से एक-दूसरे को मज़बूत किया। दूसरे दौर में जिसमें अमेरिका निर्विवाद वर्चस्ववादी ताक़त बन चुका है, राजनीतिक और आर्थिक के बीच विभाजक रेखा है क्योंकि अब पूँजी के बीच प्रतिस्पर्द्धा सैन्य तनावों को जन्म नहीं देगी।

स्पष्ट है कि कैलिनिकोस हार्वी का क़रीबी से अनुसरण करते हैं। परन्तु कैलिनिकोस का यह दावा सही नहीं है कि लेनिन का सिद्धान्त स्कीमैटिक था और उसने इस विभाजक रेखा को नहीं पहचाना। लेनिन यह नहीं मानते थे कि साम्राज्यवादियों के बीच होने वाला हर युद्ध तात्कालिक आर्थिक झड़पों का प्रत्यक्ष परिणाम था। परन्तु यह दिखाया जा सकता है कि जिन मामलों में ऐसा नहीं था, उनमें पूँजी के दीर्घकालिक आर्थिक हितों और साम्राज्यवादियों के बीच की अथवा साम्राज्यवादियों और ग़ैर-साम्राज्यवादी देशों के बीच के तनावों के बीच एक द्वंद्वात्मक सम्बन्ध होता है।

वैसे भी शीत युद्ध के अन्त के बाद से 10 में से 9 युद्ध तमाम राजनीतिक कारकों के अतिरिक्त दीर्घ-कालिक और लघु-कालिक आर्थिक हितों की वजह से छेड़े गए हैं। यह वियतनाम युद्ध, कोरियाई युद्ध के साथ ही साथ इराक़ युद्ध और अफ़ग़ानिस्तान युद्ध पर भी लागू होता है।

कैलिनिकोस यह दलील देते हैं कि पहले के मार्क्सवादी वित्तीय पूँजी की अवधारणा पर बहुत अधिक निर्भर रहे हैं जिसकी वजह से समकालीन मार्क्सवादियों को इसका एकहसास करना मुश्किल होता है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद पूँजीवाद का चरित्र बदल गया है और अब औद्योगिक पूँजी तथा बैंक की पूँजी में पृथक्करण हो गया है। उदाहरण के लिए, कैलिनिकोस यह दलील देते हैं कि जनरल मोटर्स जैसे अमेरिका के अधिकांश निगम बैंक क्रेडिट पर निर्भर रहने की बजाय अपने क्रियाकलापों के वित्तपोषण के लिए अपने खुद के राजस्व पर निर्भर रहते हैं।

आगे वे तर्क देते हैं कि ये निगम खुद अपनी वित्तीय विभाग या संस्था शुरू करते हैं जो वित्तीय गतिविधियों में भागीदारी करती है। परन्तु, यह उदाहरण दरअसल कैलिनिकोस की दलील को काटता है। इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि बैंक पूँजी औद्योगिक उद्यम में लगायी जा रही है या फिर औद्योगिक उद्यम अपनी पूँजी की प्रचुरता को वित्तीय क्षेत्र में भेजता है; अन्तिम नतीजा एक ही है। वित्तीयकरण उच्च पैमाने के उत्पादन के लिए नए निवेश करने या अपनी चल पूँजी को प्रतिस्थापित करने के लिए बैंक क्रेडिट की आवश्यकता के अतिरिक्त उत्पादक अर्थव्यवस्था में मुनाफ़े की गिरती दर का ही परिणाम है। कैलिनिकोस यह भी दलील देते हैं कि अधिकांश क्रेडिट अब औद्योगिक उद्यमों या उत्पादक अर्थव्यवस्था की बजाय उपभोक्ता की ओर जा रहे हैं। इससे वित्तीय पूँजी का चरित्र बदल गया है और यह बैंक पूँजी और औद्योगिक पूँजी के पृथक्करण को दिखाता है। हालाँकि यह तर्क भी ग़लत है क्योंकि उपभोक्ता को ऋण या तथाकथित ऋण-वित्तीयकरण मन्दी से गुज़र रही उत्पादक अर्थव्यवस्था को प्रेरणा देने के मक़सद से ही किया जाता है। अत: केवल परिघटनात्मक पहलू में ही यह सम्बन्ध बदला है।

वुड की ही भाँति कैलिनिकोस भी यह दलील देते हैं कि इराक़ युद्ध केवल तेल के लिए नहीं बल्कि अमेरिकी साम्राज्यवाद के भूराजनीतिक हितों, और विशेष रूप से इस सबसे रणनीतिक माल पर रणनीतिक नियन्त्रण क़ायम करने के लिए था। परन्तु यह बहुत मुश्किल काम है कि यहाँ भूराजनीतिक हित पूरी तरह से आर्थिक हितों से पूरी तरह से अलग हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त आनुभविक डेटा यह दिखाता है कि इराक़ युद्ध ने भारी पैमाने पर तेल कम्पनियों को लाभ पहुँचाया।

कैलिनिकोस कई मुद्दों पर लेनिन की आलोचना करते हैं जोकि बिल्कुल बेतुकी है। उदाहरण के लिए, कैलिनिकोस का मानना है कि लेनिन ने साम्राज्यवाद की परिभाषा हॉबसन से ली थी जोकि अल्पउपभोगवादी थी (प्रमाण के लिए कैलिनिकोस उस हिस्से को उद्धृत करते हैं जहाँ लेनिन विकसित देशों में पूँजीवाद के ‘‘अतिसंतृप्त’’ होने की बात करते हैं। परन्तु हम ऊपर दिखा चुके है कि लेनिन के अनुसार पिछड़े देशों में पूँजी के निर्यात का मुख्य कारण विकसित देशों में लाभप्रद रूप से निवेश न की जा सकने वाली पूँजी की ‘‘प्रचुरता’’ के कारण पैदा हुआ लाभप्रदता का संकट था।

कैलिनिकोस लेनिन की कई अन्य दलीलों को भी नहीं समझ पाए हैं। उदाहरण के लिए, कैलिनिकोस के अनुसार साम्राज्यवाद की अवस्था में पूँजीवाद के परजीवी चरित्र का अर्थ लेनिन के विश्लेषण की कमज़ोरी के रूप में देखा जाता है जिसे उन्होंने ने हॉबसन से लिया था। वे साम्राज्यवाद और साम्राज्यवादियों के अति-लाभ के प्रभाव में श्रमिक कुलीनता की परिघटना के बारे में लेनिन के विश्लेषण का भी खण्डन करते हैं।

श्रमिक कुलीनता के इस सिद्धान्त का खण्डन करने के प्रमाण के रूप में कैलिनिकोस यूरोप के अच्छी तनख्वाह वाले धातु मज़दूरों का उदाहरण देते हैं जिन्होंने बोल्शेविकों का समर्थन किया था। यह दिखाता है कि कैलिनिकोस ने श्रमिक कुलीनता की अवधारणा को बिल्कुल ही नहीं समझा है। यह महज़ आर्थिक नहीं बल्कि एक राजनीतिक अवधारणा है। सबसे पहली बात, उतने ही ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिसमें राजनीतिक नेतृत्व के ऊपरी संस्तरों पर बैठे मोटी तनख्वाह वाले सफ़ेद-कॉलर मज़दूर श्रमिक कुलीनता की दिशा में बढ़े।

मोटी तनख्वाह वाले मज़दूरों का पूरा वर्ग नहीं बल्कि उनका राजनीतिक नेतृत्व तथा उनकी एक छोटी अल्पसंख्या मज़दूर आन्दोलन में बुर्जुआ वर्ग के राजनीतिक एजेंट के रूप में उभरती है। इसके अतिरिक्त यदि हम श्रमिक कुलीनता की अवधारणा के ख़िलाफ़ कैलिनिकोस के सिद्धान्त को स्वीकार कर लें तो लेनिन का ‘कमज़ोर कड़ी’ के विचार को तिलांजलि दे गई, जो हमारी राय में पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक है।

कैलिनिकोस के सूत्रीकरण में ट्रॉट्स्कीपंथ का इतना अधिक प्रभाव है। ऐसे मामलों में कैलिनिकोस बुखारिन के सिद्धान्त को सैद्धान्तिक अध्यवसाय के लिहाज़ से श्रेष्ठ मानते हैं, जो हमारी राय में वास्तविकता से ठीक उलट है। वास्तव में, अधिक विस्तृत और आनुभविक रूप से अधिक समृद्ध होने और मार्क्स की पद्धति का अुनसरण करने के बावजूद बुखारिन की रचना द्वंद्वात्मक विश्लेषण और सामान्यीकरण के उच्च स्तर के मामले में लेनिन की रचना की तुलना में उन्नीस ही है। इसी तरह से, कैलिनिकोस लेनिन और बुखारिन द्वारा साम्राज्यवाद को इज़ारेदारी के रूप में विश्लेषित करने पर आपत्ति जताते हैं क्योंकि उनके अनुसार इज़ारेदारी का अर्थ होता है प्रतिस्पर्द्धा का अन्त, जोकि न तो लेनिन का विचार था और न ही मार्क्स का, हालाँकि बुखारिन पर ज़रूर इस विचार का प्रभाव था।

कैलिनिकोस मानते हैं कि साम्राज्यवाद की संरचना में अमेरिका वर्चस्ववादी है। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध और 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध के ब्रिटिश साम्राज्यवाद की तुलना में इसका वर्चस्व विकसित पूँजीवादी विश्व का प्रबन्धन करने पर आधारित है न कि उनसे आर्थिक और सैन्य रूप से संघर्ष करने और अन्तत: उन्हें परास्त करने पर। वे मानते हैं कि इस वर्चस्व का अर्थ यह नहीं है कि भूराजनीतिक और आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा नहीं रह गई है। वे रूस-जॉर्जिया युद्ध को उस क्षेत्र में वाशिंगटन द्वारा अपने वर्चस्व को स्थापित करने की के प्रयासों के सन्दर्भ में मॉस्को की प्रतिक्रिया के रूप में देखते हैं।

संक्षेप में, कैलिनिकोस की रचना बेहद सारसंग्रहवादी है जिसमें समाजशास्त्र की पद्धति सम्बन्धी गम्भीर समस्याएँ हैं। यह लेनिन की अवस्थिति को अनुचित ढंग से अपनाती है और उसकी ग़लत व्याख्या करके अपने सूत्रीकरणों को नई खोज के रूप में प्रस्तुत करती है। पद्धतिशास्त्र के रूप में भी कैलिनिकोस में गम्भीर समस्याएँ हैं, खासकर जब वे आर्थिक अपचयनवाद से बचने और द्वंद्वात्मक होने के नाम से भूराजनीतिक और आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा के बीच यान्त्रिक बँटवारा करते हैं। हम यहाँ कैलिनिकोस की आलोचना के सम्बन्ध में और अधिक विस्तार में नहीं जा सकते हैं।

एक अन्य रचना जिसने बहुत लोकप्रियता हासिल की है वह है जॉन स्मिथ की *Imperialism in the 21st Century*। सबसे पहले यह कहना ज़रूरी है कि स्मिथ की पुस्तक आज के साम्राज्यवाद के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण योगदान है। यह पुस्तक शानदार ढंग से और क्रान्तिकारी ऊर्जा के साथ यह दिखाती है कि किस प्रकार *राष्ट्रपारीय* निगम (*Transnational Corporations)* अपने 'सप्लाई चेन' में 'ग्लोबल साउथ' *(तीसरी दुनिया के देश)* के मज़दूरों का शोषण करते हैं; जिन भयानक परिस्थितियों में उन्हें बिना किसी सुरक्षा के इंतज़ामों के काम करना पड़ता है; और किस प्रकार 'ग्लोबल साउथ' के राज्य इस समूची प्रक्रिया, जिसे स्मिथ 'अति-शोषण' कहते हैं, के भागीदार हैं। स्मिथ बांग्लादेश और चीन जैसे देशों में मज़दूरों की परिस्थितियों का मार्मिक ब्योरा पेश करते हैं। वे बताते हैं:

> ''बांग्लादेश की भुखमरी की नौबत लाने वाली मज़दूरियाँ, मौत के मुहाने जैसे कारखाने, और बदबूदार झुग्गियाँ उन हालातों की बानगी हैं जिनमें समूचे 'ग्लोबल साउथ' करोड़ों मेहनतकशों को रहना पड़ता है, और वे साम्राज्यवादी देशों में बेशी मूल्य का वहन कर सकने वाले मुनाफ़े और उपभोग के अवहनीय स्तर को क़ायम रखने का स्रोत है।'' (John Smith, *Imperialism in the Twenty First Century,* Dev Publishers and Distributors, New Delhi, 2016, p. 10) (अनुवाद हमारा)

स्मिथ उस पूरी प्रक्रिया को दिखाते हैं जिसके तहत राष्ट्रपारीय निगम 'ग्लोबल साउथ' में करोड़ों मज़दूरों द्वारा पैदा किए गए बेशी मूल्य को हड़पती हैं और वैल्यू चेन के ज़रिये 'ग्लोबल नॉर्थ' के साम्राज्यवादी देशों की ओर भेजती हैं। इसमें यह दिखाया गया है कि चाहे वो बांग्लादेश में टी-शर्ट हो या चीन में 'साउथ' में पैदा किए गए बेशी मूल्य का बड़ा हिस्सा साम्राज्यवादी देशों में हस्तान्तरित हो जाता है। स्मिथ कहते हैं:

> ''टी-शर्ट की ही तरह उत्पादन और व्यापार से सम्बन्धित डेटा की मानक व्याख्या यह मानकर चलती है कि अमेरिका, चीन और अन्य राष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा आईफ़ोन की अन्तिम बिक्री कीमत में हिस्सेदारी उनमें से हरेक द्वारा जोड़े गए मूल्य के अनुपात में होती है। वे सरहदों के आरपार किसी भी प्रकार के मुनाफ़े के प्रवाह या मूल्य हस्तान्तरण को नहीं दिखातीं जो एप्पल और उसके विभिन्न सप्लायर्स के बीच मुनाफ़े के वितरण को प्रभावित करती हों। एप्पल के मुनाफ़े का एकमात्र हिस्सा जिसका मूल चीन से आता हुआ दिखता है वह उस देश में एप्पल के उत्पादों की बिक्री से निकला होता है। जो बात बांग्लादेश में बने टी-शर्ट पर लागू होती है वही नवीनतम इलेक्ट्रॉनिक गैजेट पर भी लागू होती है: चीन के मज़दूरों और कम मज़दूरी वाले अन्य मज़दूरों से सम्पदा का प्रवाह जो उत्तर की कम्पनियों और राष्ट्रों के मुनाफ़े और सम्पदा को क़ायम रखता है, आर्थिक डेटा और अर्थशास्त्रियों के दिमाग़ से ग़ायब हो जाता है।''(*वही,* p. 22)

इससे इनकार नहीं किया जा सकता है कि इस कथन में सत्यांश है। स्मिथ दिखाते हैं कि वैश्विक व्यापार (कुल निर्यात) का 80 प्रतिशत राष्ट्रपारीय निगमों के 'वैल्यू चेन' से सम्बन्धित है। उच्च मज़दूरियों, यूनियनीकरण, गृह राष्ट्रों में विनियमन के अवशेषों की वजह से उनकी लाभप्रदता पर डाले गए दबाव का मुकाबला करने के लिए आउटसोर्सिंग निश्चित ही 'नॉर्थ' के इन राष्ट्रपारीय निगमों की प्रतीतिगत रणनीति रही है। इसकी वजह से कम मज़दूरी वाले 'साउथ' के देशों में मज़दूरों के रोज़गार में ज़बर्दस्त बढ़ोतरी हुई है और उत्पदन 'नॉर्थ' से 'साउथ' की ओर स्थानान्तरित हुआ है। दूसरे शब्दों में वैश्विक उत्पादन का गुरुत्व केन्द्र उत्तर से दक्षिण की ओर स्थानान्तरित हो गया है। यह दावा भी सच है और इसे वास्तविक डेटा के ज़रिये दिखाया जा सकता है, जैसाकि स्मिथ ने दिखाया है।

स्मिथ की मुख्य दलील यह है कि हाल की अधिकांश बहसें मौजूदा मन्दी के कारण के रूप में वित्तीयकरण, लाभप्रदता के संकट आदि पर ज़ोर देती हैं। परन्तु कम ही लोगों ने इस पर ज़ोर दिया है कि किस प्रकार औद्योगिक उत्पादन बड़े पैमाने पर 'नॉर्थ' से 'साउथ' की ओर

स्थानान्तरित हुआ है और इस स्थानान्तरण की वजह क्या है। स्मिथ के अनुसार यह 21वीं सदी में साम्राज्यवाद की कार्य प्रणाली में हुए नए बदलाव की ओर इंगित करता है। इस बदलाव की मुख्य विशेषता मज़दूरी को श्रम शक्ति के मूल्य से कम करने की रणनीति है। स्मिथ यह दलील देते हैं कि मोजूदा साम्राज्यवाद का मूल बिन्दु अति-वित्तीयकरण, वित्तीय वर्चस्व या बकौल हार्वी 'बेदखली के ज़रिये संचय' में उतना नहीं है जितना कि वह 'ग्लोबल साउथ' के अत्यन्त सस्ते श्रम का शोषण है और साम्राज्यवादी देशों द्वारा अति-लाभ निचोड़ने की इस भूख ही उत्पादन को 'ग्लोबल साउथ' की ओर स्थानान्तरित करने का कारण है।

स्मिथ बहुतेरे मार्क्सवादियों द्वारा अपनाये गए इस नव-क्लासिकीय दृष्टिकोण की आलोचना करते हैं कि चूँकि साम्राज्यवादी देशों में श्रम अधिक उत्पादक है, इसलिए 'ग्लोबल साउथ' में भयानक कार्य परिस्थितियों और कार्य दिवस के बावजूद 'नॉर्थ' के मज़दूर अधिक शोषित हैं। स्मिथ के अनुसार, यह ग़लत अवधारणा मार्क्स की ग़लत व्याख्या पर आधारित है और यह अधिक उपयोग मूल्यों के उत्पादन को अधिक मूल्यों का उत्पादन समझने की भूल करती है।

स्मिथ के अनुसार, मज़दूरी में अन्तर श्रम की आवाजाही को कम करके पैदा किया जाता है। परन्तु स्मिथ ने विकसित देशों में उपभोक्ता वस्तुओं के सेक्टर में अधिक उत्पादकता के प्रश्न (जो दरअसल शोषण की दर को बढ़ा देती है) और कुशल श्रमशक्ति (जो श्रम प्रक्रिया में न सिर्फ़ खुद के श्रम से बल्कि उन सभी लोगों के श्रम के साथ भागीदारी करती है जिन्होंने उस कुशलता का उत्पादन करने में योगदान दिया है) के प्रश्न को स्मिथ ने संतोषजनक ढंग से नहीं विश्लेषित किया है। ये प्रश्न यह दिखा सकते हैं कि आर्थिक रूप से बेशी मूल्य की दर (s/v) विकसित देशों में समूची अर्थव्यवस्था में उत्पादक शक्तियों के उच्च स्तर के कारण अधिक *हो सकती* है। हालाँकि हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि 'ग्लोबल साउथ' की ओर उत्पादन के स्थानान्तरण के कारण प्रौद्योगिकी का यह अन्तर तेज़ी से कम हो रहा है और इस पर संदेह किया जा सकता है कि 'ग्लोबल नॉर्थ' का श्रम सामान्य तौर पर किस हद तक अधिक उत्पादक माना जा सकता है। फिर भी स्मिथ की पद्धति दिक्कततलब है।

स्मिथ यह दिखाते हैं कि पिछले दशक में 'ग्लोबल साउथ' में मज़दूरी करने वाला एक बहुत बड़ा वर्ग अस्तित्व में आया है और आज वह साम्राज्यवादी मुनाफ़े का मुख्य स्रोत है जो 'ग्लोबल साउथ' में पैदा होता है और वहाँ से हड़पकर हस्तान्तरित कर दिया जाता है। 1950 में 'साउथ' में वैश्विक कार्यबल का 34 प्रतिशत 'साउथ' में था, 1980 में यह बढ़कर 53 प्रतिशत हो गया; 2010 में यह 79 प्रतिशत था और आज यह लगभग 84 प्रतिशत है। आर्थिक रूप से सक्रिय जनसंख्या 1980 में 1.9 अरब से बढ़कर 2006 में 3.1 अरब हो गई और इस बढ़ोतरी का लगभग पूरा हिस्सा दक्षिण में हुआ। इनमें से 1.6 अरब मज़दूरी के लिए काम करते हैं, 1 अरब छोटे किसान हैं और शेष में अनौपचारिक क्षेत्र में मज़दूरी करने वाले, छोटे माल उत्पादक शामिल हैं। यह मानव सभ्यता के इतिहास में सबसे बड़ा मज़दूर वर्ग है।

इस बढ़ोतरी के बावजूद राष्ट्रीय आय में मज़दूरी का हिस्सा लगातार कम होता आया है और स्मिथ प्रभावशाली ढंग से दिखाते हैं कि यह कमी 'साउथ' के देशो में सापेक्षत: तेज़ी से हुई है। यह दिखाता है कि उत्पादन किस तरीके से 'साउथ' की ओर स्थानान्तरित हुआ है और किस प्रकार इन देशों के मज़दूरों का शोषण होता है। ये मज़दूर कम मज़दूरी वाले मज़दूर हैं जिनकी मज़दूरियाँ अधिकांशत: उनके श्रम शक्ति के मूल्य से भी नीचे कर दी गई हैं। परन्तु स्मिथ एक बात भूल जाते हैं: ये सभी मज़दूर राष्ट्रपारीय निगमों के लिए उत्पादन नहीं कर रहे हैं। वास्तव में भारत, चीन, ब्राज़ील, दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों में इनमें से अधिकांश मज़दूर इन देशों के ही विशालकाय निगमों के लिए उत्पादन करते हैं। एक अन्य मुख्य बात जिसे स्मिथ चूकते हैं वो यह है कि इन मज़दूरों की मज़दूरियाँ 'नॉर्थ' और 'साउथ' दोनों के राष्ट्रपारीय निगमों के लिए एकसमान रूप से नीचे है। इन बड़ी चूकों की वजह से स्मिथ के विश्लेषण में तमाम खामियाँ पैदा होती हैं जिन्हें हम आगे देखेंगे।

स्मिथ यह दलील देते हैं कि मार्क्स ने बेशी मूल्य बढ़ाने के दो आम तरीके बताए थे: निरपेक्ष अधिशेष मूल्य (जो पूँजीवाद की आरम्भिक अवस्था में प्रधान होता है) और सापेक्ष बेशी मूल्य (जो पूँजीवाद की उन्नत अवस्था में प्रधान होता है, हालाँकि मार्क्स हमेंशा से स्पष्ट थे कि ये दोनों ही तरीके पूँजीवाद में साथ-साथ मौजूद रहते हैं। विकसित पूँजीवादी देशों द्वारा उपनिवेशों और पिछड़े देशों में इस्तेमाल में लाया जाने वाला एक अन्य तरीका होता है मज़दूरी को श्रम शक्ति के मूल्य से नीचे करना।

परन्तु चूँकि यह प्रभावी प्रवृत्ति नहीं थी इसलिए मार्क्स ने इस तरीके का विस्तार से विश्लेषण नहीं किया था। मार्क्स के अनुसार यह मुनाफ़े की गिरती दर को रोकने के तरीकों में से एक है। स्मिथ कहते हैं कि 21वीं सदी में यह तरीका बेशी मूल्य हड़पने की प्रधान तरीका बन गया है, जबकि सापेक्ष और निरपेक्ष बेशी मूल्य द्वितीयक प्रवृत्ति बन चुकी है।

इस तरीके को स्मिथ ''अति-शोषण'' का नाम देते हैं। यह भी एक त्रुटिपूर्ण दलील है क्योंकि विविध कारणों से ऐसा ''अति-शोषण'' स्थिर नहीं रह सकता जिसमें यह तथ्य भी शामिल है कि मज़दूरियों में अन्तर सिर्फ़ इसलिए नहीं मौजूद होता है कि श्रम की आवाजाही सीमित है (एशियाई मज़दूर जब वे 'ग्लोबल नॉर्थ' में काम रहे होते हैं तब भी श्वेत मज़दूरों की तुलना में कम मज़दूरी पाते हैं), बल्कि इसलिए भी होता है कि हर देश की मज़दूरियाँ महज़ शारीरिक दृष्टि से नहीं तय की जाती है। हम जल्द ह इस बिन्दु पर वापस लौटेंगे।

स्मिथ मुख्यधारा के अर्थशास्त्र द्वारा की जाने वाली जीडीपी की गणना के तरीके की भी आलोचना करते हैं और दिखाते हैं कि 21वीं सदी में साम्राज्यवादी देशों के मामले में जीडीपी का डी (डोमेस्टिक) कोरा झूठ हो सकता है। यह विभ्रम 'जोड़े गए मूल्य' के विश्लेषण से होता है जो इस तथ्य को छिपाने के लिए बनाया गया है कि 'नॉर्थ' के देशों के जीडीपी का अधिकांश हिस्सा उन देशों के मज़दूरों द्वारा पैदा किया गया मूल्य नहीं होता बल्कि 'साउथ' के मज़दूरों द्वारा पैदा किया गया होता है। इन गणनाओं में मूल्य हड़पने को मूल्य का बनना समझ लिया जाता है।

परन्तु स्मिथ ने इन तथ्यों को यह साबित करने के लिए इस्तेमाल किया है कि दुनिया आज भी 'उत्पीड़क राष्ट्र' और 'उत्पीड़ित राष्ट्र' के बीच बँटी है। वे दलील देते हैं कि उत्पीड़क और उत्पीड़ित 'राष्ट्रों' के बीच दुनिया का यह विभाजन आज भी सच है और 'डिपेन्डेंसी' सिद्धान्तकार इस पर उचित ही ज़ोर देते हैं, हालाँकि रूढ़िवादी मार्क्सवादी और जिन्हें स्मिथ ''यूरो-मार्क्सवादी'' कहते हैं वे इसे नहीं स्वीकार करते हैं और यहाँ वे ग़लत खेमे में हैं। यहाँ यह ग़ौर करना ज़रूरी है कि उत्पीड़क और उत्पीड़ित राष्ट्रों का लेनिन का विश्लेषण पूरी तरह से उपनिवेशों, अर्द्ध-उपनिवेशों और नव-उपनिवेशों के अस्तित्व पर आधारित था।

अपनी पुस्तिका *साम्राज्यवाद* में भी जब वे राजनीतिक रूप से स्वतन्त्र देश पुर्तगाल जैसे देश पर साम्राज्यवादी प्रभुत्व की बात करते हैं तो वे किसी उत्पीड़ित राष्ट्र के बारे में बात नहीं कर रहे होते हैं बल्कि वे दिखा रहे होते हैं कि किस प्रकार पुर्तगाल जैसे राष्ट्र के बुर्जुआ वर्ग अन्तरराष्ट्रीय साम्राज्यवादी कड़ी में ब्रिटेन जैसे बड़े साम्राज्यवादी देशों के 'छोटे भाई' जैसे थे।

जहाँ एक ओर स्मिथ यह स्वीकार करते हैं कि 21वीं सदी के पूँजीवाद की विशेषता यह है इस दौर में पूँजीवाद इतिहास में पहली बार एक 'वैश्विक उत्पादन प्रणाली के रूप में उभरा है और दूसरी ओर वे 'उत्पीड़क' और 'उत्पीड़ित' राष्ट्रों के बीच के अन्तर्विरोध, यानी राष्ट्रीय मुक्त के अन्तर्विरोध की बात करते हैं; यह विडम्बनापूर्ण है। ऐसा तभी सम्भव है जब स्मिथ यह मान लें कि 'ग्लोबल साउथ' के देश अभी भी उपनिवेश, अर्द्ध-उपनिवेश या नव-उपनिवेश हैं। केवल तभी कोई 'उत्पीड़ित' और 'उत्पीड़क' राष्ट्रों की बात कर सकता है। स्मिथ की थीसिस इस बिन्दु पर सबसे कमज़ोर है। दूसरे, 'राष्ट्र' की श्रेणी का इस्तेमाल बहुत चलताऊ ढंग से किया गया है जिससे पाठक कई ग़लत नतीजे निकाल सकते हैं।

एक अन्य विडम्बनापूर्ण चीज़ यह है कि स्मिथ द्वारा 'डिपेन्डेंसी' सिद्धान्तकारों की प्रशंसा और लेनिन के विश्लेषण से उनकी समानता है। लेनिन का साम्राज्यवाद का सिद्धान्त पूँजीवाद की बुनियादी प्रवृत्तियों जैसे संचय का नियम, पूँजी का बढ़ता सान्द्रण और केन्द्रीयकरण और उसकी परिणति इज़ारेदारी के रूप में होना, अति-संचय का संकट जो लेनिन के मुताबिक और कुछ नहीं बल्कि लाभप्रदता का संकट ही है, और पूँजी का निर्यात। ये सभी नियम मूल्य के मुख्य मार्क्सवादी नियम से निगमित होते हैं।

विकसित पूँजीवादी देशों द्वारा पिछड़े देशों से 'हड़पे गए' 'अधिशेष' की पॉल बरन की अवधारणा का अनुसरण करते हुए 'डिपेन्डेंसी' सिद्धान्तकार मूल्य और बेशी मूल्य की श्रेणियों का उपयोग नहीं करते हैं। इसके अतिरिक्त, स्मिथ भी मूल्य और बेशी मूल्य की श्रेणियों का

उपयोग करते हैं! फिर भी वे 'डिपेन्डेंसी' सिद्धान्तकारों की प्रशंसा करते हैं क्योंकि वे यह दलील देते हैं कि विऔपनिवेशीकरण के बावजूद 'उत्पीड़क' और 'उत्पीड़ित' राष्ट्र बचे रह गए और अन्ततः 'डिपेन्डेंसी' सिद्धान्तों का पराभव हो गया क्योंकि ये निर्भर परिधिगत राष्ट्र कृषि प्रधान और गैर-औद्योगिकीकृत नहीं रहे, बल्कि वे औद्योगिक उत्पादन के केन्द्र बन गए।

इसलिए 'डिपेन्डेंसी' सिद्धान्त के साथ एकमात्र समस्या यह थी कि विश्व पूँजीवाद के विकास के साथ 'डिपेन्डेंसी' थियरी द्वारा बतायी गई अवस्था गुज़र चुकी है, हालाँकि उनके विश्लेषण की मुख्य श्रेणियाँ सही हैं। साथ ही स्मिथ डोर और वीक्स, निजेल हैरिस जैसे उन मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्रियों की आलोचना करते हैं जिन्होंने बुनियादी मार्क्सवादी अवस्थितियों से भटकने के लिए 'डिपेन्डेंसी' सिद्धान्त की आलोचना की थी और यह दलील दी थी कि विकसित देशों में मज़दूरों के शोषण की दर अल्पविकसित देशों में शोषण की दर से अधिक *हो सकती है,* भले ही विकसित देशों में जीवन स्तर अल्पविकसित देशों की तुलना में बेहतर हो। इस तर्क में कुछ भी ग़लत नहीं है, हालाँकि इस पर संदेह किया जा सकता है कि आज के समय में विकसित देशों के मज़दूर दक्षिण के देशों की तुलना में किस हद तक अधिक शोषित हैं (शुद्ध रूप से आर्थिक दृष्टिकोण से)। फिर भी, वीक्स, डोर, शेख, हैरिस आदि द्वारा प्रस्तुत किया गया विश्लेषण का बिन्दु यानी कम मज़दूरी 'अति-शोषण' या शोषण की अधिक दर की ओर इंगित कर सकता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है। शोषण का अर्थ महज़ कम मज़दूरी नहीं होता (भले ही वह श्रम शक्ति के मूल्य से कम हो)।

एक और बिन्दु जो स्मिथ चूक जाते हैं वह यह है कि श्रम शक्ति का मूल्य *महज़ और केवल* शारीरिक अवधारणा नहीं है। यह हर देश में प्रचलित सामाजिक और सांस्कृतिक मानकों पर निर्भर करती है जो कभी भी एकसमान नहीं हो सकती हैं, भले ही उत्पादन और पूँजी का भूमण्डलीकरण कितना भी हो जाए। यदि फ़ॉक्सकॉन की फ़ैक्ट्रियों में मज़दूरियाँ चीन के औद्योगिक मज़दूरों से भी बहुत कम है (कुशल और अकुशल श्रम शक्ति के मूल्य में अन्तर के बावजूद), तब कोई यह कह सकता है कि आर्थिक दृष्टिकोण से चीन के ये मज़दूर 'अतिशोषित हैं।

अन्यथा, जहाँ तक शुद्धतः आर्थिक मानदण्डों की बात है इस 'अति-शोषण' को साबित नहीं किया जा सकता है। 'नॉर्थ' 'शोषक' है और 'साउथ' 'अति-शोषित' यह साबित करने के लिए महज़ सीधे-सीधे दोनों जगह की मज़दूरियों की तुलना करना पर्याप्त नहीं है। साथ ही पूरी दुनिया में पूँजी की अधिक बेरोकटोक आवाजाही की वजह से मुनाफ़े की दर में बराबरी की प्रवृत्ति और मज़बूत व तीव्र हुई है। परन्तु यह श्रम का भूमण्डलीकरण नहीं है और श्रम शक्ति की आवाजाही के रास्ते में तमाम की बाधाएँ और नियन्त्रण मौजूद हैं जो स्मिथ भी मानते हैं। इसलिए राष्ट्रीय मज़दूरियों में अन्तर बढ़ गए हैं। लेकिन राष्ट्रीय मज़दूरियों में अन्तर के लिए केवल ये पाबन्दियाँ ही जिम्मेदार नहीं हैं, जैसाकि स्मिथ दावा करते प्रतीत होते हैं।

इसके अतिरिक्त मूल्य और बेशी मूल्य के पूरे हस्तान्तरण के लिए केवल इस 'अति-शोषण' को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। इसमें से कुछ ठीक वही है जिसे मार्क्स ने पूँजियों के कम आवयविक संघटन से अधिक आवयविक संघटन की ओर अथवा कम उत्पादक औद्योगिक पूँजी से अधिक उत्पादक औद्योगिक पूँजी की ओर मूल्य का हस्तान्तरण बताया था। माइकल रॉबर्ट्स ने स्मिथ द्वारा अति शोषण के ज़रिये मूल्य को हड़पना और हस्तान्तरण साबित करने के लिए इस्तेमाल किए गए सांख्यिकीय उदाहरणों का ही इस्तेमाल करके यह दिखाया है कि अगर हम यह मान भी लें कि दोनों क्षेत्रों में बेशी मूल्य की दर एकसमान है तब भी वास्तव में यह 'नॉर्थ' की पूँजी की उच्च प्रौद्योगिकी और अधिक पूँजी के आवयविक संघटन के कारण मूल्य का हस्तान्तरण है।

यह सच है कि जिसे स्मिथ 'अति-शोषण' कहते हैं उससे मूल्य का हस्तान्तरण बढ़ जाता है। परन्तु इसे अति-शोषण पर अपचयित कर देने से ग़लफ़हमी पैदा होगी। दूसरी बात, यह मानना भी ग़लतफ़हमी पैदा करेगा कि मूल्य केवल 'नॉर्थ' की विकसित पूँजियों की ओर हस्तान्तरित हो जाता है। यह मूल्य भी घरेलू और स्थानीय निगमों के वैसे ही मूल्य कड़ियों के ज़रिये भी हस्तान्तरित होता है। दूसरे, यह मानना भी ग़लत होगा कि कम मज़दूरी वाले मज़दूर केवल 'साउथ' में ही पाए जाते हैं।

वास्तव में, अमेरिका, ब्रिटेन और यहाँ तक कि जर्मनी और फ्रांस जैसे देशों में कम मज़दूरी वाले मज़दूरों का एक बहुत बड़ा वर्ग है, हालाँकि वे औद्योगिक मज़दूर नहीं हैं। वे कई तरह के सेक्टरों जैसे फूड चेन, सर्विस प्रोवाइडर्स और भाँति-भाँति के 'अनुत्पादक क्षेत्रों' में काम करते हैं।

(यह याद रखना चाहिए कि मार्क्स के अनुसार इन अनुत्पादक मज़दूरों का भी शोषण होता है, और कभी-कभी ज़बर्दस्त शोषण होता है)। अत: उत्तर में कहीं अधिक 'नॉर्थ' है और दक्षिण में हीं अधिक 'साउथ' है, लेकिन यह भी सच है कि दक्षिण में भी 'नॉर्थ' है और उत्तर में भी 'साउथ' है।

यान्त्रिक ढंग से लागू करने पर 'नॉर्थ' और 'साउथ' का पूरा विभाजन बेतुका हो जाता है, हालाँकि जो लोग यह दावा करते हैं कि आज ऐसा कोई विभाजन है ही नहीं, वे तो और भी बड़ी ग़लती करते हैं। ऐसे भद्रजन (अक्सर ट्रॉट्स्कीपंथी) यह दलील देते हैं कि क्रान्तियों की सम्भावना उत्तरी देशों में भी उतनी ही है (अगर हम भौगोलिक स्थान के बावजूद हम इसे विकसित साम्राज्यवादी देशों का पर्यायवाची के रूप में इस्तेमाल करें) और वे लेनिन की 'कमज़ोर कड़ी' के सिद्धान्त का खण्डन करते हैं, जबकि सच तो यह है कि आज यह लेनिनवादी सिद्धान्त पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हो गया है।

कहने का अर्थ यह नहीं है कि ऐसा कोई नियम है कि किसी विकसित देश में क्रान्ति हो ही नहीं सकती। (और लेनिन ने ऐसा कभी नहीं कहा था और यही वजह थी कि वे जर्मनी में क्रान्ति को लेकर आशान्वित थे)। परन्तु, स्मिथ ऐसे अध्येताओं की आलोचना एक ऐसी अवस्थिति से करते हैं जो 'थर्ड-वर्ल्डिस्ट मार्क्सिज़्म' से मिलती-जुलती है।

एक अन्य चीज़ जिसे समझना ज़रूरी है वह यह है कि कम मज़दूरी (श्रम शक्ति के मूल्य से नीचे) पर आधारित 'अति-शोषण' अगर पूरे देश में एक सामान्य चरित्र ग्रहण करने लगे तो वह एक स्थायी परिघटना नहीं हो सकती क्योंकि 'अति-शोषण' में 'अति' राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित औसत मज़दूरी के सापेक्षिक है (शारीरिक मापदण्डों के अतिरिक्त) न कि विकसित पूँजीवादी देशों या औसत अन्तरराष्ट्रीय मज़दूरी के सापेक्ष (क्योंकि दुनिया भर में मज़दूरी के एकसमान होने की प्रवृत्ति इतनी कमज़ोर है कि वह एक अन्तरराष्ट्रीय औसत मज़दूरी की प्रवृत्ति पैदा ही नहीं कर सकती; राष्ट्रीय मज़दूरियों के अन्तर का यही कारण है)।

पूँजियों के बीच प्रतिस्पर्द्धा और साथ ही मज़दूरों के बीच भी उनपर थोपी पूँजीवादी प्रतिस्पर्द्धा की वजह से जब ये कम मज़दूरियाँ एक स्वीकृत और स्थापित परम्परा बन जाती हैं तो वे उस देश में श्रम-शक्ति का नया औसत मूल्य प्रदर्शित करती हैं। अत: अगर हम 'अति'-शोषण' के तर्क की बुनियाद में जाएँ तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि *शुद्ध आर्थिक अर्थों में* कोई स्थायी 'अति-शोषण' जैसी चीज़ नहीं हो सकती है, हालाँकि देशों के बीच मज़दूरियों का फ़र्क अपने आप में एक अन्तरराष्ट्रीय शक्ति संरचना को दिखाता है। लेकिन अन्तिम विश्लेषण में, इसे उत्पादक शक्तियों के पूँजीवादी विकास के विभिन्न स्तरों और विश्व पूँजीवाद की संरचना में विभिन्न देशों के ऐतिहासिक स्थान पर अपचयित किया जा सकता है।

जॉन स्मिथ पर 'थर्ड वर्ल्डिस्ट मार्क्सवाद' और मंथली-रिव्यू स्कूल मार्क्सवाद के पुरज़ोर प्रभाव से इनकार नहीं किया जा सकता है। स्मिथ की एक और ग़लती नज़र आती है जब हिगिंबॉटम का अनुसरण करते हुए वे कहते हैं कि लेनिन ने साम्राज्यवाद का विश्लेषण करते हुए मूल्य के नियम और मुनाफ़े की गिरती दर की प्रवृत्ति का सहारा नहीं लिया था। यह लेनिन का एक ग़लत पाठ है जिसका हम ऊपर खण्डन कर चुके हैं। स्मिथ की यह बात सच है कि वैश्विक औद्योगिक उत्पादन के 'साउथ' की ओर स्थानान्तरण का कारण विकसित देशों की पूँजी में लाभप्रदता का संकट है। वे दक्षिण के देशों में मज़दूरी कम बनाए रखने में श्रम की आवाजाही पर पाबन्दियों की भूमिका की सही शिनाख़्त करते हैं।

परन्तु उनका यह निष्कर्ष बेतुका है कि चीन, भारत, बांग्लादेश, वियतनाम जैसे देशों में मज़दूरों का अति-शोषण इन 'राष्ट्रों' का उत्पीड़क 'नॉर्थ' के द्वारा उत्पीड़न है। इसका कारण यह है कि कभी-कभी कम मज़दूरी वाले ये मज़दूर राष्ट्रपारीय निगमों को आपूर्ति नहीं करने वाले उन देशों के निगमों द्वारा बराबर या कभी-कभी ज़्यादा शोषित होते हैं (शोषण की दर और साथ ही साथ शोषित मज़दूरों की संख्या के मायने में)। ये निगम खुद एशिया और अफ्रीका के देशों और यहाँ तक कि यूरोप व अमेरिका में पूँजी का निर्यात करते हैं। क्या हम इस बुर्जुआ वर्ग को राष्ट्रीय कह सकते हैं? क्या हम चीन, भारत , ब्राज़ील आदि को 'उत्पीड़ित राष्ट्र' मान सकते हैं? ऐसा नहीं है कि चीन, भारत, ब्राज़ील जैसे देशों में औद्योगिक और वित्तीय बुर्जुआ वर्ग नहीं है और वहाँ वाणिज्यिक या नौकरशाह बुर्जुआ वर्ग का प्रभुत्व है। अत: आज के दौर में 'उत्पीड़ित' और 'उत्पीड़क' राष्ट्रों का तर्क बेतुका है।

‘ग्लोबल साउथ’ के मज़दूरों के शोषण से कोई इनकार नहीं कर सकता; लेकिन इस शोषण को ‘ग्लोबल नॉर्थ’ के देशों द्वारा ‘ग्लोबल साउथ’ के देशों का राष्ट्रीय उत्पीड़न कहने से ग़लतफ़हमी पैदा होती है क्योंकि यह ‘ग्लोबल साउथ’ के देशों के पूँजीवादी विकास को, उनके बुर्जुआ वर्ग के चरित्र को, जिस तरीके से वे बुर्जुआ वर्ग कम मज़दूरी वाले मज़दूरों का शोषण करते हैं उनको पूरी तरह से नज़रअन्दाज़ करता है और इस तथ्य का भी कि राष्ट्रीय स्तर पर ‘ग्लोबल साउथ’ के इन देशों के पूँजीपति वर्ग वास्तव में हस्तगत किए गए अधिशेष के बड़े भागीदार हैं, हालाँकि वे वैश्विक स्तर पर हड़पे गए अधिशेष के निश्चित रूप से ‘कनिष्ठ भागीदार’ हैं। नतीजतन इन देशों में पूँजीवादी विकास की बारीकियाँ, समीकरण और राजनीतिक निहितार्थ स्मिथ के विश्लेषण से पूरी तरह से ग़ायब हैं।

संक्षेप में, उत्पादन के ‘ग्लोबल साउथ’ की ओर स्थानान्तरित होने की प्रक्रिया के शानदार विश्लेषण, ‘ग्लोबल साउथ’ के मज़दूरों के शोषण के अमानवीय तरीकों के विश्लेषण, कम मज़दूरी और भयंकर कार्य परिस्थितियों के विश्लेषण, जिस प्रक्रिया से 'नॉर्थ’ के राष्ट्रपारीय निगम मुनाफ़ा कमाते हैं, इन सबके शानदार विश्लेषण के बावजूद स्मिथ का आर्थिक विश्लेषण कमज़ोर है और इस वजह से उनके राजनीतिक निष्कर्ष दिग्भ्रमित करने वाले और कभी-कभी बेतुके भी हैं। ‘थर्ड-वर्ल्डिज्म’, ‘मंथली रिव्यू’ स्कूल, ‘डिपेन्डेंसी थियरी’ के प्रभाव, लेनिन के साम्राज्यवाद के सिद्धान्त के कुछ तत्वों के ग़लत पाठ और मार्क्स के सिद्धान्तों के चयनात्मक पाठ की वजह से उनकी इस रचना में इक्कीसवीं सदी में साम्राज्यवाद का सही दृष्टिकोण नहीं प्रस्तुत हो सका है।

निष्कर्ष के स्थान पर ...

ख़ास तौर पर 1970 के दशक के बाद से साम्राज्यवाद की कार्यप्रणाली में आए बदलावों की रोशनी में साम्राज्यवाद के एक मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त के विकास का कार्य अभी पूरा किया जाना बाकी है। मा.ले. परिप्रेक्ष्य से कई सारी चीज़ों का विश्लेषण करना होगा। उनमें से कुछ परिमाणात्मक बदलावों को दिखाते हैं जबकि कुछ अन्य गुणात्मक बदलावों से सम्बन्धित हैं। पोस्ट-फ़ोर्डिज्म के उभार से लेकर एक वैश्विक असेम्बली लाइन, साम्राज्यवादी दुनिया में बहु-ध्रुवीयता के नए आयाम, उच्च स्तर का अनौपचारीकरण, विनियमीकरण, अति-वित्तीयकरण, सट्टेबाज पूँजी का प्रभुत्व और किसी समाजवादी खेमे की ग़ैर-मौजूदगी तक, जिन नए तरीकों से साम्राज्यवादी ताक़तों के बीच छद्म युद्धों के रूप में साम्राज्यवाद सैन्य झड़पें और युद्ध पैदा कर रहा है, अमेरिका के वर्चस्व में होता ह्रास, चीन-रूस अक्ष का उभार, पूर्व उपनिवेश जो अब विशेष प्रकार का ही सही लेकिन पूँजीवादी देश बन चुके हैं उनमें सर्वहारा क्रान्ति की नई रणनीति और आम रणकौशल; इन सभी बदलावों का विश्लेषण करने और समझने की ज़रूरत है। इस विश्लेषण को करने के प्रयास जारी हैं और उसके नतीजे मिले-जुले हैं। हमारा मक़सद साम्राज्यवाद के इन सभी सिद्धान्तों का सारांश प्रस्तुत करना नहीं था (ऐसा हो भी नहीं सकता था)। हमारा लक्ष्य महज़ मार्क्स से लेकर लेनिन तक के क्लासिकीय मार्क्सवादी सिद्धान्तों के गूढ़ पहलुओं को प्रस्तुत करना, विऔपनिवेशीकरण और उसके बाद के समय में साम्राज्यवाद को समझने के प्रयासों की समीक्षा, अल्पउपभोगवाद और ‘थर्ड वर्ल्डिस्ट’ मार्क्सवादी सिद्धान्तों के विरुद्ध क्लासिकीय मार्क्सवादी अवस्थिति को पुनर्जीवित करना और उसके बाद आज जिसे ‘नया साम्राज्यवाद’ कहा जा रहा उसके कुछ प्रातिनिधिक सिद्धान्तों को प्रस्तुत करना था। हमारा उद्देश्य एक सामान्य

आलोचनात्मक सार प्रस्तुत करना नहीं बल्कि समकालीन घटनाक्रमों की रोशनी में इन सिद्धान्तों का विश्लेषण करना, ख़ासकर मार्क्स और लेनिन के ग़लत पाठों और ग़लत व्याख्याओं का खण्डन करना और साम्राज्यवाद पर मार्क्सवादी-लेनिनवादी अवस्थिति को ऐसे प्रश्नों के साथ पुनर्प्रस्तुत करना जो इक्कीसवीं सदी के सन्दर्भ में साम्राज्यवाद का सिद्धान्त विकसित करने में उत्पादक हो सकते हैं। हम उम्मीद करते हैं कि हम साम्राज्यवाद की सिद्धान्तों की आलोचनात्मक समीक्षा के पहले के प्रयासों की तुलना में बेहतर ढंग से विफल हुए हैं।